ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज
गुरु वे हैं जो हमको,
लघु न रहने दें ।
नजरों से दे दें सब कुछ,
कुछ न कहने दें ।।
दीदार पाकर उनका,
हम निहाल हो गये ।
खुली आँख लगी समाधि,
'स्व' में जग गये ।।
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
अंक : १५१ जुलाई २००५ मूल्य : रु. ६/- हिन्दी

भक्तिरस की मधुरता व शुद्ध आत्मिक आनंद का आस्वादन करने भक्तों की विशाल जनमेदिनी उमड़ी पठानकोट (पंजाब) में। यहाँ की ऐतिहासिक भीड़ ने पंडाल को नन्हा और सत्संग-कार्यक्रम को एक ऐतिहासिक कार्य साबित कर दिया तथा जन-जन पर एक अमिट छाप छोड़ी। भक्तों का विशाल श्रद्धाभाव देखकर धन्य हुए पठानकोटवासी !
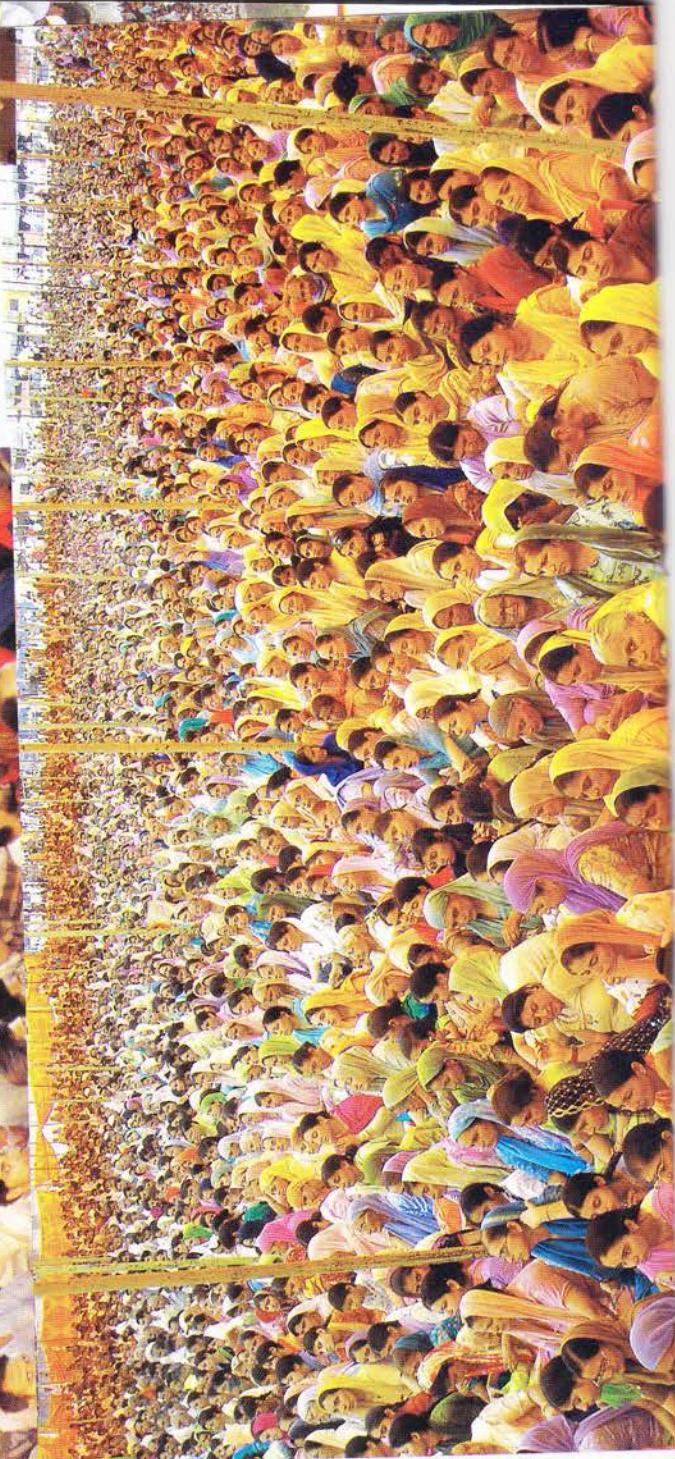
उत्तम स्वास्थ्य, वास्तविक सुख, प्रतिष्ठित जीवन की कुंजियाँ यहाँ मिल जाती हैं तो फिर भक्तों का विशाल सैलाब क्यों न उमड़ेगा ? – जम्मू (जम्मू-कश्मीर) के सत्संग का एक दृश्य।

वर्ष : १६ अंक : १५१ जुलाई २००५ आषाढ़-श्रावण, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

अनुक्रम

कौन पंडित और कौन मूर्ख ?

आत्मज्ञानी की महिमा

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास कुलकर्णी

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : **'ऋषि प्रसाद'**, श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

प रि प्र श्न

प्रश्न : पूज्य बापूजी ! गुरुपूर्णिमा से क्या अभिप्राय है ?

पूज्यश्री : गुरुपूर्णिमा गुरु के पूजन का पर्व है। गुरु की पूजा कोई व्यक्ति की पूजा नहीं है, गुरु का आदर-पूजन किसी व्यक्ति का आदर-पूजन नहीं है परंतु गुरु की देह के अंदर जो विदेही आत्मा है, परब्रह्म परमात्मा है उसका आदर-पूजन है... ज्ञान का आदर-पूजन है... ब्रह्मज्ञान का आदर-पूजन है... अज्ञानरूपी बेहोशी से ज्ञानरूपी होश में लानेवाले गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का अवसर है गुरुपूर्णिमा।

सुख को सपना, दुःख को बुलबुला और सुख-दुःख जिससे दिखता है उस परब्रह्म परमात्मा को अपने आत्मरूप में जानने की याद दिलानेवाला पर्व है गुरुपूर्णिमा।

यह पर्व पूर्णिमा को ही मनाया जाता है क्योंकि पूर्ण ज्ञान, पूर्ण सुख दिलानेवाले सद्गुरुदेव पूर्ण आत्मारामी हैं। पूर्ण गुरुदेव की पूर्णता से अनेक अपूर्ण शिष्य पूर्ण हो जाते हैं, परंतु गुरुदेव की पूर्णता में जरा भी कमी नहीं आती। ऐसे पूर्ण गुरुओं के पूजन का दिन है गुरुपूर्णिमा।

प्रश्न : पूज्यश्री ! हमारी हर वस्तु भगवान का प्रसाद कैसे बने ?

पूज्य बापूजी : मान लीजिये आप मंदिर में गये, साथ में ठाकुरजी को चढ़ाने के लिए कोई वस्तु भी ले गये। ठाकुरजी के मन में किसी चीज-वस्तु की लालसा ही नहीं है और आपके चढ़ाने से पहले भी वह वस्तु ठाकुरजी की ही है। परंतु आपने वस्तु अर्पण की तो आपकी उससे ममता हटी। ममता हटी, घटना घटी... वह वस्तु प्रसाद हो गयी। अर्थात् ममता हटने से वस्तु प्रसाद हो जाती है और प्रसाद दुःखों का अंत कर देता है।

वस्तु अर्पण करने के बाद ऐसा भाव आता है कि 'अब यह मेरी नहीं है, यह भी खाये - वह भी खाये...' आनंद होता है कि 'चलो, अपने द्वारा लायी गयी वस्तु प्रसाद बनकर सब तक पहुँच गयी, यह भगवान की दया है।' परंतु घर आये किसी मेहमान को खिलाते हैं तो 'जब हम उसके घर जायेंगे तब वह भी हमें खिलाये, हमारा आतिथ्य करे।' इस प्रकार का भाव मन में रहता है और वह वैसा न करे तो 'मैंने इसको इतना खिलाया और हम इसके घर गये तो इसने कुछ भी नहीं खिलाया।' इस प्रकार की फरियाद होगी।

जब तक किसी वस्तु में आपकी ममता है तब तक वह एक तुच्छ वस्तु मात्र है और जब आप उससे अपनी ममता हटा लेते हो तो वह आपके लिए भगवान

ने न...

का प्रसाद अर्थात् दुःखनिवारक व सुखप्रदायक हो जाती है।

प्रश्न : मौत का भय क्यों होता है ?

पूज्य बापूजी : शरीर में ममता है, धन में ममता है इसलिए मौत का भय होता है। अगर भौतिक चीजों से ममता हट जाय तो सीधा परमात्मा में ममता हो जाती है।

तुलसी ममता राम से, समता सब संसार।
राग न द्वेष न दोष दुःख, दास गये भवपार ॥

और परमात्मा में ममता हो जाती है तो व्यक्ति सारे दुःखों से एवं भवसागर से पार हो जाता है।

प्रश्न : मूढ़ किसे कहते हैं ?

पूज्य बापूजी : मूढ़ उसे नहीं कहते जो अनपढ़ है अथवा जो मजदूरी करता है। मूढ़ उसे कहते हैं जो संसार को सत्य मानकर संसार की नश्वर चीजों से अपने को सदा सुखी रखने की कोशिश में लगा है। तुम पत्थर को बेवकूफ या मूढ़ नहीं कहते हो क्योंकि उसमें कुछ ज्ञान है ही नहीं तो उसे बेवकूफ कैसे कहें ? इसी प्रकार वृक्ष को भी तुम बेवकूफ नहीं कहते। मूढ़ वह है जो कुछ बातें तो जाने परंतु कुछ आवश्यक बातें न जाने। जैसे - आपने लड़के से कहा : ''जाओ, चाय में शक्कर डाल दो और दाल में नमक।'' उसने चाय में नमक डाल दिया और दाल में शक्कर। आपके मुख से स्वाभाविक निकल पड़ा : ''अरे ! तू तो निरा मूर्ख है, मूढ़ है।'' अब देखिये कि लड़का चाय की तपेली को तो जानता है, आपके वचन को भी सुनता है परंतु आगे का काम करने में गड़बड़ कर देता है। तो मूर्ख उसे कहा जाता है जो समझना चाहिए वह न समझे, जो पाना चाहिए वह न पाये, जिस वक्त जो करना चाहिए वह न करे और जो नहीं करना चाहिए वह उसी वक्त करे। भगवान श्रीकृष्ण ऐसे लोगों को 'विमूढ़' कहते हैं :

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।
(श्रीमद्भगवद्गीता : १५.१०)

मूढ़ लोग उस 'मैं' तत्त्व को, अपने निज स्वरूप को नहीं देख सकते, क्योंकि उसे तो ज्ञान की आँख से देखा जाता है।

मूढ़ व्यक्ति अवस्थाओं व परिस्थितियों को मनचाही करने में लगा रहता है परंतु वे सदैव मनचाही नहीं रहतीं इसलिए परेशान रहता है।

आओ करें मानस-पूजा

आओ करें मानस-पूजा, गुरुपूनम पर्व है आया।
गुरुवर ने अनुकंपा कर, मोक्षमार्ग दिखलाया ॥
खत्म हुई माया की माया, जब से गुरुमंत्र है पाया।
इसीलिए गुरुपूजा हेतु, भक्त-समाज है आया ॥
लाखों की तादाद यहाँ पर, सो इक विचार आया।
भीड़-भाड़ में गुरु-दर्शन को, कैसे जाय पाया ॥
शोरगुल और धक्कम-धक्का नहीं करना है आज।
शांति रखें हर पल, यह गुरु-प्रसन्नता का राज ॥
शांति-संयम-धीरज से, होता है लाभ अपार।
गुरुवर भी छलकाते हैं, निज सुख की अमृत-धार ॥
तो क्या करना है गौर कीजिये, जहाँ हैं वहीं पे ठहरें।
गुरु की मूरत हिय में धारें, अंदर उतरें गहरे ॥
अनुशासन से शांति का, परिचय देंगे हरदम।
अपनी जगह पे ही, मानस-पूजा कर लेंगे हम ॥
जहाँ गुरु हैं वह काशी है, वहीं हैं चारों धाम।
गुरु का नाम रटने से, मिलता है अंतर आराम ॥
गंगाजल से प्रक्षालन, करते हैं चरणकमल।
गुरुवर को अर्पित हैं, वस्त्र केसरी और धवल ॥
इन पदकमलों में अर्पित हैं, हिय के श्रद्धा-सुमन।
ऐसा वर दो सदा करें हम, सद्गुरु देश-गमन ॥
मन से ही मस्तक पर, तिलक करते हैं चंदन।
खड़े-खड़े या बैठके, गुरु को करते हैं वंदन ॥
हार गुलाब चमेली का, हम करते हैं अर्पण।
गुरुसेवा ही गुरुनिष्ठा का, एकमात्र दर्पण ॥
कर्ता-भोक्तापन अर्पित है, गुरु हैं पूरण भगवान।
गुरुवर से ही जुड़े रहेंगे, अपने मन-बुद्धि-प्राण ॥
हे गुरुवर ! चरणों में विनती, कर लेना स्वीकार।
हर कण-कण में आपका, होता रहे हमें दीदार ॥
ऐसा वर पाकर भक्तों की, सफल हुई कामना।
जहाँ कहीं हम रहें हमारा, हाथ तुम्हीं थामना ॥
सार्थक है भक्तों की भक्ति, अनुशासन की मिसाल।
सबने रखी हरदम शांति, गुरु ने किया निहाल ॥
गुरुवर का प्रसाद यही है, हृदय रखें साफ।
ज्यों-ज्यों अहं भुलाते हैं, त्यों-त्यों गुरु मिलते आप ॥
हे गुरुवर ! जय-जय हो आपकी, बार-बार है नमन।
ज्ञान-प्रदीप हृदय में प्रकटे, और श्रद्धा-सुमन ॥

- प्रदीप काशीकर

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

'श्रीमद्भागवत महापुराण' से

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी बोले : इस अशुभ संसार की दलदल में फँसकर अशुभमय हो जानेवाले जीव के लिए भगवान की यह प्राप्ति संसार के चक्कर को मिटा देनेवाली है। इसी वस्तु को कोई विद्वान ब्रह्म और कोई निर्वाण-सुख के रूप में पहचानते हैं। इसलिए मित्रो ! तुम लोग अपने-अपने हृदय में हृदयेश्वर भगवान का भजन करो। असुरकुमारो ! अपने हृदय में ही आकाश के समान नित्य विराजमान भगवान का भजन करने में कौन-सा विशेष परिश्रम है ? वे समानरूप से समस्त प्राणियों के अत्यंत प्रेमी मित्र हैं; और तो क्या, अपने आत्मा ही हैं। उनको छोड़कर भोग-सामग्री इकट्ठी करने के लिए भटकना कितनी मूर्खता है ! अरे भाई ! धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी, खजाना और भाँति-भाँति की विभूतियाँ - और तो क्या, संसार का समस्त धन तथा भोग-सामग्रियाँ इस क्षणभंगुर मनुष्य को क्या सुख दे सकती हैं, जब वे स्वयं ही क्षणभंगुर हैं। जैसे इस लोक की *सम्पत्ति प्रत्यक्ष ही नाशवान है,* वैसे ही यज्ञों से प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि लोक भी नाशवान और तुलनात्मक दृष्टि से एक-दूसरे से छोटे-बड़े, नीचे-ऊँचे हैं। इसलिए वे भी निर्दोष नहीं हैं। निर्दोष हैं केवल परमात्मा। न किसीने उनमें दोष देखा है और न सुना है, अतः परमात्मा की प्राप्ति के लिए अनन्य भक्ति से उन्हीं परमेश्वर का भजन करना चाहिए।

इसके सिवा अपने को बड़ा विद्वान माननेवाला पुरुष इस लोक में जिस उद्देश्य से बार-बार बहुत-से कर्म करता है, उस उद्देश्य की प्राप्ति तो दूर रही - उलटा उसे उसके विपरीत ही फल मिलता है और निस्संदेह मिलता है। कर्म में प्रवृत्त होने के दो ही उद्देश्य होते हैं - सुख पाना और दुःख से छूटना। परंतु जो पहले कामना न होने के कारण सुख में निमग्न रहता था, उसे ही अब कामना के कारण यहाँ सदा-सर्वदा दुःख ही भोगना पड़ता है। मनुष्य इस लोक में सकाम कर्मों के द्वारा जिस शरीर के लिए भोग प्राप्त करना चाहता है, वह शरीर ही पराया, स्यार-कुत्तों का भोजन और नाशवान है। कभी वह मिल जाता है तो कभी बिछुड़ जाता है। जब शरीर की यह दशा है, तब इससे अलग रहनेवाले पुत्र, स्त्री, महल, धन, सम्पत्ति, राज्य, खजाने, हाथी-घोड़े, मंत्री, नौकर-चाकर, वृद्धजन और दूसरे अपने कहलानेवालों की तो बात ही क्या है। ये तुच्छ विषय शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। ये जान तो पड़ते हैं अर्थरूप, परंतु हैं वास्तव में अनर्थरूप ही। आत्मा स्वयं ही अनंत आनंद का महान समुद्र है। उसके लिए इन वस्तुओं की क्या आवश्यकता है ? भाइयो ! तनिक विचार तो करो, जो जीव गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यंत सभी अवस्थाओं में अपने कर्मों के अधीन होकर क्लेश-ही-क्लेश भोगता है, उसका इस संसार में स्वार्थ ही क्या है ? यह जीव सूक्ष्म शरीर को ही अपना आत्मा मानकर उसके द्वारा अनेकों प्रकार के कर्म करता है और कर्मों के कारण ही फिर शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार कर्म से शरीर और शरीर से कर्म की परंपरा चल पड़ती है और ऐसा होता है अविवेक के कारण। इसलिए निष्काम भाव से निष्क्रिय आत्मस्वरूप भगवान श्रीहरि का भजन करना चाहिए। धर्म,

कर्म में प्रवृत्त होने के दो ही उद्देश्य होते हैं - सुख पाना और दुःख से छूटना। परंतु जो पहले कामना न होने के कारण सुख में निमग्न रहता था, उसे ही अब कामना के कारण यहाँ सदा-सर्वदा दुःख ही भोगना पड़ता है।

अर्थ और काम - सब उन्हींके आश्रित हैं, बिना उनकी इच्छा के नहीं मिल सकते । भगवान श्रीहरि समस्त प्राणियों के ईश्वर, आत्मा और परम प्रियतम हैं। वे अपने ही बनाये हुए पंचभूत और सूक्ष्मभूत आदि के द्वारा निर्मित शरीरों में जीव के नाम से कहे जाते हैं । देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा गंधर्व - कोई भी क्यों न हो, जो भगवान के चरणकमलों का सेवन करता है, वह हमारे ही समान कल्याण का भाजन होता है।

दैत्यबालको ! भगवान को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना, सदाचार और विविध ज्ञानों से संपन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक और मानसिक शौच एवं बड़े-बड़े व्रतों का अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान केवल निष्काम प्रेम-भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं, और सब तो विडम्बनामात्र हैं। इसलिए दानव-बंधुओ ! समस्त प्राणियों को अपने समान ही समझकर सर्वत्र विराजमान, सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान भगवान की भक्ति करो। भगवान की भक्ति के प्रभाव से दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, गौपालक, अहीर, पक्षी, मृग और बहुत-से पापी जीव भी भगवद्भाव को प्राप्त हो गये हैं। इस संसार में या मनुष्य-शरीर में जीव का सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात् एकमात्र परमार्थ इतना ही है कि वह भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति प्राप्त करे । उस भक्ति का स्वरूप है सर्वदा, सर्वत्र सब वस्तुओं में भगवान के दर्शन।

नारदजी कहते हैं : प्रह्लादजी का प्रवचन सुनकर निर्दोष होने के कारण दैत्यबालकों ने उसी समय से उनकी बात पकड़ ली। गुरुजी की दूषित शिक्षा की ओर उन्होंने ध्यान ही न दिया।

(क्रमशः)

हर जगह विवेक चाहिए

पाप से अपने मन को बचाओ और धूप से अपने सिर को। धूप ज्ञानतंतुओं, यादशक्ति, नेत्रों, कानों तथा नाक को बड़ा नुकसान पहुँचाती है। कान, नाक और आँखों की कार्यक्षमता लम्बे समय तक बनाये रखनी हो तो आप धूप से अपने सिर की रक्षा करें। यह भी बेचारा आप ही का है, इसकी भी सेवा कर लो । माताएँ अपना सिर साड़ी या दुपट्टे से ढँका करें और भाई लोग टोपी-पगड़ी आदि से अपने सिर की रक्षा करें। यह नियम सदा के लिए बना लें।

शौच जाने से पूर्व भी सिर को ढँकना चाहिए। आपका सिर और कान ढँक जायें ऐसी कोई टोपी शौचालय के बाहर रख दें और शौच जाते समय उसे पहन लें। इससे रक्त तथा वायु की गति अधोमुखी हो जाती है, जिससे मलत्याग में सहायता मिलती है और अपवित्र मल के कीटाणुओं से शरीर के उत्तम तथा पवित्र अंगों - सिर आदि की रक्षा होती है। इस समय दाँत भींचकर रखने से दाँत मजबूत बनते हैं।

ऋषियों ने कैसी सूक्ष्म खोज की है ! पहले के जमाने में लोग ऋषियों के इन निर्देशों का पालन करते थे, इसी कारण सौ-सौ साल जीते थे। आज के लोग तो जाँघों के बल जैसे कुर्सी पर बैठा जाता है ऐसे ही 'वोटर क्लोसेट' (पाश्चात्य पद्धति का शौचालय) पर बैठकर पेट साफ करते हैं। इससे नुकसान होता है। उनको पता ही नहीं कि शौच के समय आँतों पर दबाव पड़ना चाहिए, तभी पेट अच्छी तरह से साफ होगा। शौचालय सादा अर्थात् जमीन पर पायदानवाला होना चाहिए। शौच के समय सर्वप्रथम शरीर का वजन बायें पैर पर अधिक रखें, फिर दायें पैर पर वजन बढ़ाते-बढ़ाते दोनों पैरों पर समान कर दें। इससे आँतों की कसरत हो जायेगी और पेट ठीक से साफ हो जायेगा। खड़े-खड़े पेशाब नहीं करना चाहिए, इससे नुकसान होता है।

...तो हर जगह विवेक चाहिए। खान-पान, शयन, स्वास्थ्य-सुरक्षा आदि का विवेक यह सामान्य विवेक है परंतु सत्संग से विवेक होता है अपने आत्मा-परमात्मा को पाने का। यदि मनुष्य को सत्संग मिल गया तो समझो उसका जन्म सफल हुआ, नहीं तो वह अभागा है। धनभागी हैं वे लोग जो सत्संग खोज लेते हैं और उसका लाभ उठाकर अपने जीवन को उन्नत बनाते हैं।

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

कौन पंडित और कौन मूर्ख ?

महात्मा विदुरजी श्री कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यासजी के सुपुत्र थे और राजा विचित्रवीर्य की रानी अम्बिका की दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वे अत्यंत न्यायपरायण, सत्यवादी, कुशल राजनीतिज्ञ, धर्मनीतिज्ञ एवं अर्थनीतिज्ञ थे। कुरुदेशनरेश राजा धृतराष्ट्र को जो उन्होंने व्यवहार, नीति, सदाचार, धर्म, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिंसा सम्बंधी उपदेश दिये, वे सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'विदुर नीति' के रूप में प्रसिद्ध हैं।

जब पांडवों का १२ वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा हुआ, तब उन्होंने संजय के द्वारा कौरवों को यह संदेश भिजवाया कि वे अपना राज्य वापस चाहते हैं। संजय ने महाराज धृतराष्ट्र को पांडवों का संदेश सुनाकर खूब समझाया कि कौरवों ने यह जो पांडवों का राज्य वापस न देने का प्रबल निश्चय किया है, यह सर्वथा धर्म एवं राजनीति के विरुद्ध है और उनके भावी विनाश का कारण बन सकता है। अंत में उसने कहा : ''मैं कल कौरव-सभा में अजातशत्रु युधिष्ठिर के वचन कहूँगा।''

संजय के अंतिम वचन को सुन महाराज धृतराष्ट्र अत्यंत चिंतित-से, अशांत-से हो गये। उन्होंने तुरंत संदेश भिजवाकर महात्मा विदुर को बुलवाया और उनके आने पर उनसे निवेदन किया कि ''तुम धर्म और अर्थ के ज्ञाता हो, सब विद्वानों के माननीय हो। तुम अपने धर्मयुक्त तथा कल्याणकारी वचनों को कहो, जिससे मैं शांत हो सकूँ।''

महात्मा विदुर बोले : ''हे राजन्! जो धर्म प्रशंसित तथा जिसमें पांडवों व कौरवों - दोनों का भला होगा वही बात मैं आपसे कहूँगा।

राजन्! दया, धर्म, सत्य, पराक्रम आदि श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न राजा युधिष्ठिर आपमें पूज्यबुद्धि रखते हैं। वे आपकी आज्ञा में रहे और चुपचाप सब कष्टों को सहते रहे, परंतु आपने धर्म के जानकार होते हुए भी अधर्म का साथ दिया और आज भी अधर्म का साथ देना चाहते हैं। विवेकी, पंडित की यह पहचान नहीं है।

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पंडितलक्षणम्॥

जो अच्छे कर्म करता और बुरे कर्मों से दूर रहता है, साथ ही जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसके ये सद्गुण पंडित होने के लक्षण हैं।

क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता तथा अपने को पूज्य समझना - ये भाव जिसको पुरुषार्थ से भ्रष्ट नहीं करते, वही पंडित कहलाता है।

दूसरे लोग जिसके कर्तव्य, सलाह और पहले से किये हुए विचार को नहीं जानते, बल्कि काम पूरा होने पर ही जानते हैं, वही पंडित कहलाता है।

सर्दी-गर्मी, भय-अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता - ये जिसके कार्य में विघ्न नहीं डालते, वही पंडित कहलाता है।

जिसकी लौकिक बुद्धि धर्म एवं अर्थ (शास्त्रों के निर्देश) का ही अनुसरण करती है और जो भोग को छोड़कर पुरुषार्थ का ही वरण करता है, वही पंडित कहलाता है।

जो पहले निश्चय करके फिर कार्य को आरंभ करता है,

कार्य के बीच में नहीं रुकता, समय को व्यर्थ नहीं जाने देता और चित्त को वश में रखता है, वही पंडित कहलाता है।

भरतकुलभूषण ! पंडितजन श्रेष्ठ कर्मों में रुचि रखते हैं, उन्नति के कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालों में दोष नहीं निकालते।

जो सुंदर ढंग से बातचीत करता है, तर्क में निपुण और प्रतिभाशाली है तथा जो ग्रंथों के तात्पर्य को शीघ्र बता सकता है, जिसकी वाणी कहीं रुकती नहीं वह पंडित कहलाता है।

जिसकी विद्या बुद्धि का अनुसरण करती है और बुद्धि विद्या का तथा जो शिष्ट पुरुषों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, वही पंडित की पदवी पा सकता है। परंतु -

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥

जो अपना कर्तव्य छोड़कर दूसरे के कर्तव्य का पालन करता है तथा मित्र के साथ असत् आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

जो शत्रु (हमारा अहित चाहने व करनेवाला) को मित्र बनाता और मित्र (हितैषी) से द्वेष करते हुए उसे कष्ट पहुँचाता है, जो अपने से बलवान के साथ वैर बाँधता है तथा जो सदा बुरे कर्मों का आरंभ किया करता है, उसे 'मूढ़ चित्तवाला' कहते हैं।

भरतश्रेष्ठ ! जो अपने कर्मों को व्यर्थ ही फैलाता है, सर्वत्र संदेह करता है तथा शीघ्र होनेवाले कार्य में भी देर लगाता है, वह मूढ़ है।

जो अपने बल को न समझकर बिना काम किये ही धर्म और अर्थ (शास्त्रोक्त निर्देश) से विरुद्ध तथा न पाने योग्य वस्तु की इच्छा करता है, वह पुरुष इस संसार में मूढ़बुद्धि कहलाता है।

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पंच जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥

एक (बुद्धि) से दो (कर्तव्य और अकर्तव्य) का निश्चय करके चार (साम, दाम, भेद और दण्ड) से तीन (शत्रु, मित्र तथा उदासीन) को वश में कीजिये । पाँच (इन्द्रियों) को जीतकर, छः (संधि[1], विग्रह[2], यान[3], आसन[4], द्वैधीभाव[5] और समाश्रयरूप[6]) गुणों को जानकर तथा सात (स्त्री, जुआ, शिकार, मद्य, कठोर वचन, दण्ड की कठोरता और अन्याय से धन का उपार्जन) को छोड़कर सुखी हो जाइये।

पंडितजन श्रेष्ठ कर्मों में रुचि रखते हैं, उन्नति के कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालों में दोष नहीं निकालते।

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन्नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥

राजन् ! जैसे समुद्र से पार जाने के लिए नाव ही एकमात्र साधन है, उसी प्रकार स्वर्ग के लिए सत्य ही एकमात्र सोपान है, दूसरा नहीं, किंतु आप इसे समझ नहीं रहे हैं।''

सत्य की महत्ता पर प्रकाश डालनेवाली एक प्रसिद्ध कथा है। एक चोर को किसी महात्मा का सत्संग प्राप्त हुआ। महात्मा ने उसे चोरी न करने को कहा परंतु चोर के द्वारा अपनी असमर्थता प्रकट की जाने पर महात्मा ने कहा : ''ठीक है, चोरी करो या न करो किंतु असत्य कभी नहीं बोलना।''

चोर ने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा कर ली। कुछ समय पश्चात् वह चोर राजमहल में चोरी करने गया।

द्वारपाल ने पूछा : ''तुम कौन हो ?''

उसने उत्तर दिया : ''चोर।''

द्वारपाल ने सोचा कि 'यदि यह वास्तव में चोर होता तो ऐसा कभी नहीं बोलता, यह अवश्य राजा का कोई विश्वासपात्र है और किसी गुप्त राज्यकार्य में नियुक्त है ।' इसलिए द्वारपाल ने उसे जाने दिया।

चोर चोरी का माल लेकर जब वापस आया तो द्वारपाल के टोकने पर उसने कहा कि ''चोरी का माल ले जा रहा हूँ।''

द्वारपाल ने पहले की भाँति फिर विश्वास करके उसे जाने दिया । दूसरे दिन राजमहल में हाहाकार मच गया, माल की ढूँढ़ा-ढूँढ़ शुरू हुई और वह माल इस चोर के यहाँ मिला। चोर को राजा के समक्ष उपस्थित किया गया। उसने सारा वृत्तांत राजा के सामने बता दिया । राजा चोर की गुरुनिष्ठा एवं सत्यनिष्ठा देखकर प्रसन्न हो गया और उसने उसे प्रचुर धन एवं जमीन देकर उसके जीविकोपार्जन की स्थायी व्यवस्था कर दी। उसके बाद चोर ने चोरी करना छोड़ दिया।

अतः मानना पड़ता है कि सत्य-पथ पर चलने से किसी पाप या दुर्गुण का टिकना संभव नहीं। (क्रमशः)

---

१. राजाओं के बीच होनेवाला वह निश्चय या प्रतिज्ञा जिसके अनुसार पारस्परिक युद्ध बंद किया जाता है, मित्रता या व्यापार-सम्बंध स्थापित किया जाता है। २. विपक्षियों में कलह या फूट पैदा करना। ३. शत्रु देश पर की जानेवाली सैनिक चढ़ाई। ४. बैठने का कोई विशिष्ट ढंग या प्रकार। ५. दोनों ओर मिलकर चलने या रहने की अवस्था या भाव। ६. किसीको आश्रय या सहायता प्रदान करना।

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ।।
(श्रीरामचरित. बा.कां. : ११२.१)

सर्वश्रेष्ठ सत्कर्म क्या है ?

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

जिन्होंने अपने कानों से भगवान की कथा नहीं सुनी, उनके कान साँप के बिल के समान हैं। अगर जीवन में भगवत्कथा नहीं आयी तो संसार की व्यथा अवश्य आयेगी। 'यह अच्छा है... यह बुरा है... यह ऐसा है... यह वैसा है...' - इस प्रकार की बातें व्यक्ति सुनेगा तो जैसा सुनेगा वैसा ही चिंतन उसके मन में होता रहेगा और मन भटकता रहेगा।

मनुष्य को ईश्वरप्राप्त्यर्थ, ईश्वरप्रीत्यर्थ सत्कर्म करना चाहिए, निष्काम कर्म करना चाहिए परंतु निष्प्रयोजन कर्म नहीं करना चाहिए। निष्प्रयोजन कर्म समय-शक्ति को तो खा ही जाता है, साथ-ही-साथ हमारे जीवन को भी निगल जाता है। अतः यदि निष्प्रयोजन बातें सुनेंगे तो मन निष्प्रयोजन संकल्प-विकल्प करेगा, निष्प्रयोजन प्रवृत्ति होगी, फिर जीवन भी निष्प्रयोजन हो जायेगा। अतः व्यर्थ की बातों से बचते हुए भगवत्कथा, संतकथा, सत्संग ही सुनना चाहिए।

खाना-पीना यह जीवन का प्रयोजन नहीं है, वरन् जीवन का प्रयोजन है मुक्ति, शाश्वत सुख। शास्त्रों में आता है कि जिसने भगवत्कथा नहीं सुनी अथवा दूसरों को सुनाने में जो भागीदार नहीं हुआ, ऐसा सत्कर्म से विमुख व्यक्ति मनुष्यरूप में द्विपाद पशु है।

किसी हारे हुए में हिम्मत भरना, भूखे को भोजन कराना, प्यासे को पानी पिलाना, अनपढ़ को पढ़ाई के रास्ते लगाना - ये सब सत्कर्म तो हैं परंतु इनसे सदा के लिए दुःखनिवृत्ति नहीं होती। सदा के लिए दुःख निवृत्त करने का सामर्थ्य यदि किसीमें है तो वह है सत्संग।

तुम घर-घर को सदावर्त (वह स्थान जहाँ भूखों को नित्य निःशुल्क भोजन मिलता हो) में बदल दो, लोगों को नौकरी दिला दो, बँगला दिला दो, एक-एक व्यक्ति के पीछे एक-एक चिकित्सक, एक-एक गाड़ी और एक-एक महल की व्यवस्था कर दो फिर भी जब तक उनके मन में दुःख का सर्जन होता रहेगा, तब तक मनुष्य-जाति दुःख से मुक्त नहीं होगी।

ऐसा नहीं है कि जो धन की दृष्टि से गरीब हैं वे ही दुःखी हैं। जिनके पास प्रचुर मात्रा में धन-संपत्ति और सुख-सुविधाएँ हैं, वे भी बेचारे परेशान और दुःखी हैं।
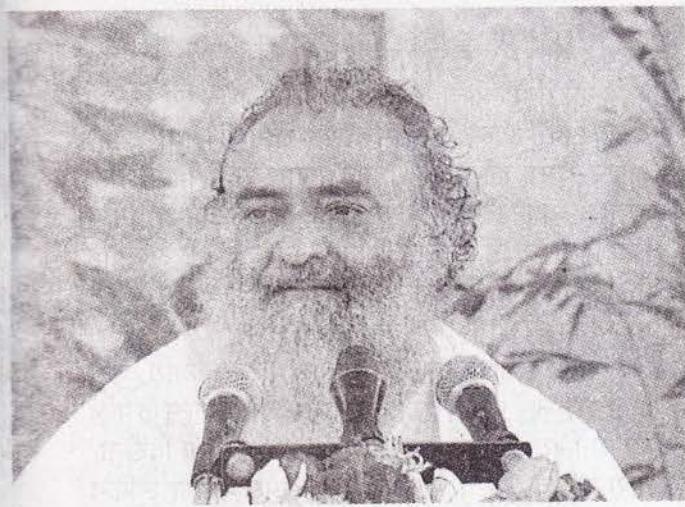
तुम घर-घर को सदावर्त में बदल दो, लोगों को नौकरी दिला दो, बँगला दिला दो, एक-एक व्यक्ति के पीछे एक-एक चिकित्सक, एक-एक गाड़ी और एक-एक महल की व्यवस्था कर दो फिर भी जब तक उनके मन में दुःख का सर्जन होता रहेगा, तब तक मनुष्य-जाति दुःख से मुक्त नहीं होगी ।

यहाँ के लोगों के जीवन से अमेरिका के लोगों का जीवन अधिक सुविधा-संपन्न है, किंतु मानसिक रोगी एवं अशांत व्यक्ति भी वहीं ज्यादा हैं। इसका कारण यह है कि वहाँ ऐहिक सुख-सुविधाएँ तो खूब हैं परंतु आत्मशांति दिलानेवाले सत्संग की सुलभता नहीं है। जबकि भारत में लोग आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने पर भी उनके अंतर में शांति व आनंद है और इसका कारण है सत्संग, भगवत्कथा का श्रवण, 'श्रीराम जय राम जय-जय राम' या 'हरि हरि ॐ' के श्रवण-कीर्तन में लोगों की आस्था।

दूसरों के दुःख की निवृत्ति के लिए उन्हें ऐहिक साधन देना-दिलाना अच्छा है, परंतु इससे भी बढ़िया है उनको आत्मानुभव से तृप्त संत-महापुरुषों के सत्संग का लाभ देना-दिलाना। स्वामी विवेकानंदजी कहते थे : ''तुम किसी भूखे को भोजन कराते हो, प्यासे को पानी पिलाते हो, किसीको अच्छे रास्ते लगाते हो, किसी हारे हुए में हिम्मत भरते हो तो यह परोपकार तो है, बढ़िया तो है परंतु इनसे भी श्रेष्ठ है किसीको सत्संग देना-दिलाना। जो किसीको सत्संग देने-दिलाने में भागीदार होता है, वह मानव-जाति का परम हितैषी है क्योंकि सदा के लिए सब दुःखों की निवृत्ति भगवत्तत्त्व के ज्ञान से, भगवत्स्वरूप के ध्यान से ही संभव है।''

सारे संशय, चिंता, दुःख और जन्म-मरण मिटाने का रामबाण उपाय है जप-साधन-सत्संग। जिसके बारे में मन बार-बार सुनता है उसका बार-बार चिंतन करता है और जिसके बारे में बार-बार चिंतन होता है वह हमारे मन-मति में छा जाता है। अगर किसीका द्वेषपूर्ण चिंतन करते हो और उसके बारे में द्वेषपूर्ण बातें सुनते हो तो आपके मन में उसके लिए नफरत पैदा होगी और भगवान के बारे में सुनते हो, उनका प्रेमभाव से चिंतन करते हो तो आपके मन में उनके लिए भगवद्भाव पैदा होगा। अतः सदैव भगवत्कथा का ही रसपान करें, भगवान के बारे में ही सुनें और सुने हुए का मनन करें, भगवान के बारे में ही सोचें तथा नित्य भगवद्-आनंद का रस लें। इससे आपका जीवन भगवन्मय हो जायेगा।

आप भगवत्कथा का श्रवण स्वयं तो करें ही, साथ ही लोगों को भी उसमें भागीदार बनायें ताकि सब भगवत्कथा के श्रवण-मनन द्वारा दुःखों से निर्मुक्त होकर अपने जीवन को दिव्य बना सकें। सत्यस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो भी कर्म किया जाता है वह सत्कर्म है, श्रेष्ठ कर्म है, श्रेष्ठ धर्म है।

सत्संग की आधी घड़ी,
सुमिरन वरस पचास।
वर्षा वर्षे एक घड़ी,
अरहट फिरे बारहों मास ।।
पड़ा रहेगा माल खजाना
छोड़ त्रिया सुत जाना है।
कर सत्संग अभी से प्यारे
नहीं तो फिर पछताना है ।।

वसिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी ! जिन ज्ञानवान पुरुषों ने आत्मारूपी तीर्थ में स्नान किया है, शरीर में आत्मा के दर्शन किये हैं वे पवित्रात्मा अपवित्र को भी पवित्र कर देते हैं।

ज्ञानवान आत्मबोध से नित्य तृप्त रहते हैं । वे न जगत के सत्यभाव को देखते हैं न असत्यभाव को, न ज्ञात को देखते हैं न अज्ञात को, न जड़ को देखते हैं न चेतन को; वे तो केवल अद्वैत तत्त्व को ही देखते हैं।

हे रामजी ! ज्ञानवान किसी भी पदार्थ के लिए यत्न नहीं करते । उन्हें जैसा भी प्राप्त होता है उसीमें प्रसन्न रहते हैं । वे हर्ष-शोक के वश नहीं होते और राग-द्वेष से रहित होकर विचरते हैं । वे बड़े भोगों में रहें या वन में जा बैठें अथवा मद्यपान से उन्मत्त हों, गयादि तीर्थों में निवास करें अथवा कंदरा में निवास करें, शरीर पर अगर, चंदनादि का लेपन करें अथवा कीचड़ लगा लें, देह अभी गिर पड़े अथवा कल्पपर्यंत रहे, उनको कदाचित कलंक नहीं लगता । जैसे सुवर्ण को कीचड़ के संग से दोष नहीं लगता, वैसे ही ज्ञानवान को कर्तृत्व का दोष नहीं लगता।''

नाली में सोना गिर जाय तो क्या है ? नाली का कीचड़ सोने में घुस जायेगा क्या ? जैसे कीचड़ का दोष सोने को नहीं लगता, ऐसे ही जिसने साधन एवं सत्संग करके अपने आत्मा की अमरता का ज्ञान पा लिया, अपने आत्म-वैभव को पा लिया वह संसार से प्रभावित नहीं होता । उसकी कितनी भी वाहवाही हो, उसको अभिमान नहीं होता । कोई मनचले ईर्ष्यालु उसके बारे में अफवाह फैला दें, उसकी निंदा करें तो भी उसको भय नहीं होता। वह महापुरुष जीते-जी मुक्तात्मा होता है।

शरीर हजारों वर्ष जीये चाहे अभी चला जाय, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि उसने शरीर के जन्म के फल को पा लिया है । वह हर्ष के समय हर्षित होता दिखेगा, नाराजगी के समय नाराज होता हुआ दिखेगा लेकिन अंदर से अपने आत्मस्वरूप में ज्यों-का-त्यों टिका हुआ होता है।

धीरो न द्वेष्टि संसारमात्मानं न दिदृक्षति।
हर्षामर्षविनिर्मुक्तो न मृतो न च जीवति ॥

'हर्ष, व्याधि से मुक्त धीर ज्ञानी संसार से न द्वेष करता है और न ही उसे आत्मा को देखने की इच्छा होती है। न वह मृत होता है और न जीवित।'

(अष्टावक्र गीता : १८.८३)

उपदेश देते हुए श्री वसिष्ठ महाराज

सर्वत्रानवधानस्य न किंचिद्वासना हृदि। मुक्तात्मनो वितृप्तस्य तुलना केन जायते॥

'जिसकी कहीं कोई आसक्ति नहीं है, जिसके हृदय में कुछ भी पाने की वासना नहीं है, जो भलीभाँति संतुष्ट है, उसकी तुलना किससे की जा सकती है, किसीसे नहीं वह तो अतुलनीय है।'

(अष्टावक्र गीता : १८.८९)

आत्मज्ञानी की महिमा

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

वह ऐसी ऊँची अवस्था में होता है।

सर्वत्रानवधानस्य न किंचिद्वासना हृदि।
मुक्तात्मनो वितृप्तस्य तुलना केन जायते॥

'जिसकी कहीं कोई आसक्ति नहीं है, जिसके हृदय में कुछ भी पाने की वासना नहीं है, जो भलीभाँति संतुष्ट है, उसकी तुलना किससे की जा सकती है, किसीसे नहीं वह तो अतुलनीय है।' **(अष्टावक्र गीता : १८.८९)**

आज किसी भिखमंगे को दस लाख रुपये मिल जायें तो वह कितनी उछलकूद करेगा... दस लाखवाले व्यक्ति को दस करोड़ मिल जायें तो कितना उछलेगा... दस करोड़वाले को हजार करोड़ मिल जायें तो उसके रहन-सहन आदि में कितना फेरफार हो जायेगा... हजार करोड़वाले को धरती का राज मिल जाय तो उसकी इच्छाएँ कितनी खिल उठेंगी... और धरती के राजवाले को इंद्रपद मिल जाय तो कहना ही क्या! परंतु इंद्रपद भी जिस आत्मा-परमात्मा की शांति और सुख के आगे एकदम नगण्य है, ऐसे अपने आत्मा-परमेश्वर को भीतर-ही-भीतर पाकर ज्ञानवान अहंकार नहीं करता।

यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति॥

'जिस पद को पाये बिना इंद्र आदि सब देवता भी अपने को कंगाल मानते हैं, उस आत्मपद को पाकर योगी को हर्ष नहीं होता, वह अहंकार नहीं करता - यह भी एक आश्चर्य है।' **(अष्टावक्र गीता : ४.२)**

यह आत्मदेव का ज्ञान, आत्मदेव का सुख ऐसा अद्भुत है!

कबीरजी कहते हैं :

संत मरे क्या रोइये, जाय अपने घर।

तो अपना घर क्या है ? अपना घर अपना आत्मदेव है। उस आत्मदेव को जानो जिसके आगे जगत का बड़े-में-बड़ा पद भी कुछ नहीं, जीवन भी कुछ नहीं, मृत्यु भी कुछ नहीं।

जैसे सागर में बुलबुले पैदा होते हैं, तरंगें पैदा होती हैं और विलीन हो जाती हैं... फिर पैदा होती हैं, नाचती-कूदती हैं और विलीन हो जाती हैं... यह सारा खेल चलता रहता है, वैसे ही संसार में भी सुख-दुःखरूपी तरंगों का खेल चलता रहता है। इस खेल को जो लोग सच्चा मानते हैं वे माया में फँस जाते हैं, परंतु इस खेल को जाननेवाले आत्मा-परमात्मा को जो सच्चा जान लेते हैं, उनका जीवन धन्य हो जाता है।

सारे दुःखों का मूल

'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में आता है : 'तत्त्वज्ञानी पूज्य पुरुषों की उपेक्षा करनेवाले, शास्त्र और उसके अर्थ की अवहेलना करनेवाले मूढ़ों की तुलना को कभी भी प्राप्त न हों अर्थात् उनके समान आचरण कभी भी न करो।'

आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों और शास्त्रों की अवहेलना करने के कारण लोग दुःखी होते हैं। आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों के ज्ञान और उनके अनुभव की अवहेलना न करे तो कोई कभी भी दुःखी न हो। आज आत्मज्ञान के दिव्य शास्त्रों की उपेक्षा हो रही है और उनके अनुभवसंपन्न महापुरुषों के प्रति लोग उदासीन हो गये हैं - यही सारे दुःखों का मूल है। अपने घर में ही हम पराये हो गये हैं क्योंकि आसुरी संपदा से युक्त लोगों का संग बढ़ गया है, उनका अनुकरण बढ़ गया है। दैवी संपदावाले दुःखी हो ही नहीं सकते। ऐसा नहीं है कि आज एक ही आदमी दुःखी है।

गोरखनाथजी कहते हैं :

एक भूला दूजा भूला
भूला सब संसार।
बिन भूल्या एक गोरखा
जाको गुरु आधार ॥

सारा संसार इसी भूलभुलैयाँ में पड़ा है कि 'इतना करूँगा, इतना बनाऊँगा, इतना पाऊँगा... फिर मैं सुखी होऊँगा।' शास्त्रों व महापुरुषों की अवहेलना करके जहाँ सच्चा सुख है उधर जाने की तरकीब मानव भूल गया, इसलिए वह आज दुःखी है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **संतुष्टः सततं योगी...** योगी सतत संतुष्ट रहता है, ज्ञानी महापुरुष सदैव सुखी रहते हैं, किंतु भोगी सतत संतुष्ट, सुखी नहीं रह सकता।

सुखी होने की अचूक युक्तियाँ

सब चाहते होना सुखी,
कोई सुखी देखा नहीं।
लाखों-करोड़ों में मिला,
ज्ञानी सुखी विरला कहीं ॥
विद्वज्जनों से बहुत-सी,
शोभन सुनी हैं युक्तियाँ।
सुखकारिणी भयहारिणी,
सुनिये सुनाऊँ सूक्तियाँ ॥
सुख-दुःख बाहर हैं नहीं,
सुख-दुःख मन के माँहिं हैं।
मन स्वस्थ हो तो दुःख फिर,
किंचित कभी भी नाँहिं है ॥
जो मूढ़ बाहर ढूँढ़ता सुख,
सो कभी ना पाय है।
अन्तर्मुखी हो जाय सो,
सत्वर सुखी हो जाय है ॥
समभाव सच्चा योग है,
समभाव सच्ची भक्ति है।
समभाव सम्यक् ज्ञान है,
समभाव जीवन्मुक्ति है ॥
समभाव भजिये सर्वदा,
पापौघ यह हर लेय है।
अन्तःकरण कर स्वच्छ अति,
सुख शांति अविचल देय है ॥

बार-बार हम लोग यह बात कहते-सुनते हैं कि 'हम मनुष्य हैं।' किंतु मनुष्य की मनुष्यता का वास्तविक आरम्भ तब होता है, जब मनुष्य मानव-जीवन के लक्ष्य पर चलना आरम्भ करता है। विषय-भोग, इन्द्रियों के भोग मानव-शरीर का, मनुष्य-योनि का उद्देश्य नहीं हैं :

एहि तन कर फल बिषय न भाई।
(श्रीरामचरित. उ.कां. : ४३.१)

मानव-शरीर में और इतर शरीरों में यही भेद है। दूसरे समस्त शरीर भोगयोनि हैं, मानव-शरीर कर्मयोनि है और यह मोक्ष का द्वार है। शास्त्रों ने इसे भवसागर से पार उतारनेवाली सुदृढ़ नौका कहा है :

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥
(श्रीमद्भागवत : ११.२०.१७)

भगवान कहते हैं : मनुष्य-जन्म, मनुष्य का शरीर बड़ा दुर्लभ है। यह भगवत्कृपा से सुलभता से प्राप्त हुआ है। यह है कैसा ? यह भवसागर से पार उतार देनेवाली बड़ी सुंदर, सुदृढ़ नौका है। संत-महात्मा, गुरु-आचार्य तथा स्वयं भगवान इसके कर्णधार हैं। नाव को खेनेवाले निर्भ्रान्त, सबल तथा ठीक-ठीक पार पहुँचा देनेवाले केवट प्राप्त हो गये हैं।

'मयानुकूलेन नभस्वतेरितं'

भगवान की कृपारूपी अनुकूल वायु इसे प्राप्त है। इतने पर भी जो **'भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा'** - भवसागर से पार नहीं उतरता वह आत्महत्यारा है :

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥
(श्रीरामचरित. उ.कां. : ४४)

यह है मानव-जीवन का उद्देश्य और उसकी उपयोगिता। अतएव बहुत गंभीरतापूर्वक विचार करके मानव को अपने जीवन का कर्तव्य निश्चित करना चाहिए तथा उसका पालन करना चाहिए। जहाँ मानव-जीवन बहुत बड़ी आशा की चीज, बहुत बड़े भरोसे की चीज - भगवत्प्राप्ति का साधन है, वहाँ यह बड़े खतरे की चीज भी

मानव बनने का प्रयत्न करें

भगवान कहते हैं : मनुष्य-जन्म, मनुष्य का शरीर बड़ा दुर्लभ है। यह भगवत्कृपा से सुलभता से प्राप्त हुआ है। यह है कैसा ? यह भवसागर से पार उतार देनेवाली बड़ी सुंदर, सुदृढ़ नौका है। संत-महात्मा, गुरु-आचार्य तथा स्वयं भगवान इसके कर्णधार हैं।

है। यह खतरा दूसरी योनियों में नहीं है। अन्य योनियाँ चाहे वे बाघ, कुत्ता, बिच्छू, साँप की ही क्यों न हों, अपने-अपने कर्म का फल भोगकर आगे बढ़ रही हैं, उनकी क्रमोन्नति हो रही है। लेकिन मानव-जीवन कर्मयोनि होने के कारण इसमें कर्म करने का अधिकार है :

कर्मण्येवाधिकारस्ते।

मानव के लिए ही भगवान ने, ऋषियों ने विधि-निषेधात्मक शास्त्रों की रचना की है, जिनसे वह जान सके कि उसके लिए क्या करना उचित है, क्या अनुचित है। क्या विधेय है, क्या निषिद्ध है - यह जानकर वह उन कर्मों को करे, जिन कर्मों के द्वारा भगवद्भक्ति प्राप्त हो, भगवान की उपलब्धि हो, भगवान का तत्त्वज्ञान प्राप्त हो। यदि वह उन कर्मों को नहीं करता, यदि वह मोहवश भोगों में आसक्त होकर भोगों व विषय-विकारों में ही लिप्त रहता है तो मानव-जीवन बड़े खतरे की चीज बन जाती है।

जो भोग-परायणता को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानता है, उस असुर मानव को पाँच चीजें प्राप्त होती हैं - चार इसी जीवन में और एक मृत्यु के बाद।

प्रथम : उसका चित्त कभी शांत नहीं रहता, यह अनुभवपूर्ण सत्य है कि यहाँ कोई कितना ही वैभवसंपन्न क्यों न हो जाय, धनवान, सत्तावान हो जाय, सभी प्रकार की समुचित सुविधाएँ प्राप्त हो जायें, पर जब तक वह भोग-परायण है, उसे कभी शांति नहीं मिल सकती।

द्वितीय : आखिरी श्वास तक वह चिंताग्रस्त रहता है, चिंता के दुःख-सागर में डूबता-उतराता रहता है, चिंता की अग्नि में जलता रहता है।

चिंता से चतुराई घटे, घटे बुद्धि और ज्ञान।
चिंता बड़ी अभागिनी, चिंता चिता समान ॥

तृतीय : वह पाप में लीन रहता है। भोग-कामना उसके विवेक का अपहरण कर लेती है और उसका जीवन पाप-परायण हो जाता है।

चतुर्थ : उसकी मृत्यु बड़ी दुःखमय होती है। मृत्यु के समय उसे स्मरण आता है : 'यह छूट गया, वह छूट गया, वह काम नहीं हुआ...।' उसकी वृत्ति इधर-उधर जाती है और अत्यंत वेदना के साथ उसका अंत होता है।

पंचम : मरने के बाद उसे बुरे-बुरे नरकों की प्राप्ति होती है - **'पतन्ति नरकेऽशुचौ'**, एक बार नहीं, वह **'जन्मनि-जन्मनि'** - एक जन्म के पश्चात् दूसरे जन्म में, दूसरे जन्म के पश्चात् तीसरे जन्म में इस प्रकार कई जन्मों तक नाना दुःखदायी योनियों को प्राप्त होता है। अतः जिस महान उद्देश्य के लिए, भगवान को प्राप्त करने के लिए मानव-शरीर प्राप्त हुआ है, वह महान उद्देश्य उन भूले-भटकों का धरा रह जाता है।

मानव-जीवन जहाँ मोक्ष का द्वार है वहीं नरक का भी द्वार है, इस सत्य का भली प्रकार अनुभव करें, समझें और वास्तविक रूप में मानव बनने का प्रयत्न करें।

जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण कैसा है ?

आपके जीवन के प्रसंग किससे मिलते-जुलते हैं - पहले प्रसंग से या दूसरे से ? यदि भीतर से उत्तर आता है कि 'पहले से' तो शीघ्र ही दूसरे प्रकार के किसी सत्संगी से मित्रता कीजिये और प्रतिदिन सत्संग-श्रवण कीजिये, जिससे आपका जीवन भी दूसरे सज्जन जैसा जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से ओत-प्रोत, प्रेमाभक्तिमय, भगवद्-दृष्टिमय, तत्त्वदृष्टिमय हो जाय।

एक साहब दफ्तर से घर जाने के लिए निकले। आज वे बड़े खुश नजर आ रहे हैं। उनकी इस खुशी का कारण है आज ही उनकी फाइल में जुड़ा पदोन्नति-पत्र। वे इस चिंतन में जल्दी-जल्दी कदम आगे बढ़ा रहे हैं कि 'घर जाकर पत्नी को यह खुशखबर सुनाऊँगा...' परंतु यह क्या ! अचानक वे फिसल पड़े और उनके चेहरे की सारी रौनक गायब ! एक ओर से ''हुर्रे-हुर्रे... !'' की तुमुल ध्वनि निनादित हो उठी और दूसरी ओर साहबजी की गोलाबारी शुरू हुई : ''यू स्टूपिड ! इडियट ! नॉन्सेन्स ! सारा मूड खराब कर दिया।''

रास्ते में कुछ शरारती बच्चों ने केले के छिलके कागज के टुकड़ों से ढँककर रखे थे और वे काफी समय से शिकार की ताक में नजर लगाये बैठे थे। यह उनका पहला शिकार था।

थोड़ी देर बाद वहीं से इन साहबजी के एक सहयोगी गुजरे। आज इनकी पदोन्नति होनेवाली थी परंतु ले-देकर उपरोक्त प्रसंगवाले साहबजी ने उसे अपनी झोली में डलवा लिया था। लोगों की दृष्टि में यह दुःखी होने की बात थी किंतु इनके चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी। उस स्थान पर पहुँचते ही उनके साथ भी वही घटना घटी। वे शांति से उठे और मुस्कराते हुए उन बच्चों की ओर जाने लगे। बच्चे डर गये कि ये मुस्करा तो रहे हैं किंतु अब खूब पिटाई होगी ! परंतु उन्होंने उन शरारती बच्चों के नायक को प्यार से सहलाते हुए कहा : ''प्यारे कन्हैया ! पूजा के समय तो तुम अविचल होकर स्थित होते हो। लीलाधारी ! बहुत दिनों से तुम्हारी लीला देखने की इच्छा थी। लगता है आज तुम मुझ पर बड़े प्रसन्न हो, जो तुमने मुझे अपनी लीला में शामिल किया, अपने नटखट रूप के दर्शन दिये। सूरदासजी जैसे संत तुम्हारे 'बालकृष्ण' रूप पर न्योछावर हो जाते हैं तो कोई तुम्हारे 'गीताकार योगेश्वर' रूप पर फिदा हो जाते हैं, कोई तुम्हें 'धर्मरक्षक, भक्तवत्सल' के रूप में हृदय-मंदिर में बिठाते हैं तो अनपढ़ गोप-गोपियों जैसे तुम्हें अपने जैसा ही 'गोकुल का ग्वाला' मानकर तुमसे स्नेह करते हैं। मेरे प्यारे ! तुम चाहे किसी भी रूप में आओ और कोई भी लीला करो, अब तुम मुझे भुलावे में नहीं डाल सकते।'' ऐसा कहकर बड़ी प्रसन्नता से वे अपने घर की ओर निकल पड़े। आज उनके चेहरे पर विशेष प्रसन्नता झलक रही थी।

अब आप थोड़ा अपने अंदर भी झाँकिये, अपने-आपसे पूछिये कि आपके जीवन के प्रसंग किससे मिलते-जुलते हैं - पहले प्रसंग से या दूसरे से ? यदि भीतर से उत्तर आता है कि 'पहले से' तो शीघ्र ही दूसरे प्रकार के किसी सत्संगी से मित्रता कीजिये और प्रतिदिन सत्संग-श्रवण कीजिये, जिससे आपका जीवन भी दूसरे सज्जन जैसा जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से ओत-प्रोत, प्रेमाभक्तिमय, भगवद्-दृष्टिमय, तत्त्वदृष्टिमय हो जाय।

हिंसक बन गया परम भक्त

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष किसीको भी अपने से अलग नहीं देखते और प्राणिमात्र पर अपनी करुणा-कृपा रखते हैं। वे सभीका आत्मोत्थान चाहते हैं। वे हमारे अंतःकरण में भरे कूड़े-कचरे को अपने उपदेशों द्वारा बाहर निकाल फेंकते हैं और हमारे हृदय को निर्मल व पवित्र बना देते हैं। वे हमें जीवन जीने की सही राह दिखाते हैं।
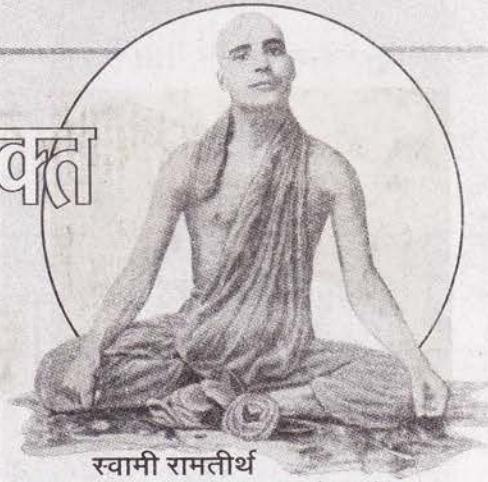
स्वामी रामतीर्थ

परब्रह्म-परमात्मा के साथ एकत्व के अनुभव को उपलब्ध स्वामी रामतीर्थ देश-विदेश में घूम-घूमकर ब्रह्मविद्या का उपदेश देते थे। बात फरवरी सन् १९०२ की है, 'साधारण धर्मसभा, फैजाबाद' के दूसरे वार्षिकोत्सव में स्वामी रामतीर्थ भी पधारे। स्वामीजी तो वेदान्ती थे। 'सबमें ब्रह्म है, सब ब्रह्म में है, सब ब्रह्म है। मैं ब्रह्म हूँ, आप भी ब्रह्म हैं, ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है।'- इसी सनातन सत्य ज्ञान की पहले दिन उन्होंने व्याख्या की। श्रोताओं में एक सज्जन श्री नौरंगमल भी मौजूद थे। उनके पास एक मौलवी मोहम्मद मुर्तजा अली खाँ भी बैठे थे। नौरंगमलजी ने मौलवी साहब से कहा : ''सुनते हो मौलाना! यह युवक क्या कह रहा है? कहता है कि मैं खुदा हूँ।'' यह सुनकर मौलवी साहब आपे से बाहर हो गये और कहने लगे : ''अगर इस वक्त मुसलमानी राज्य होता तो मैं फौरन इस काफिर की गर्दन उड़ा देता। किंतु अफसोस! मैं यहाँ मजबूर हूँ।''

दूसरे दिन मौलवी साहब फिर धर्मसभा में आये, वहाँ सुबह का सत्संग चल रहा था। मंडप श्रद्धालुओं से भरा हुआ था। स्वामी रामतीर्थ फारसी में एक भजन गा रहे थे जिसका मतलब था : ''हे नमाजी! तेरी यह नमाज है कि केवल उठक-बैठक? अरे! नमाज तो तब है जब तू ईश्वर के विरह में ऐसा बेचैन और अधीर हो जाय कि न तुझे बैठते चैन मिले और न खड़े होते। असली नमाज तो तभी कहलायेगी, नहीं तो यह केवल कवायद मात्र है।''

स्वामी रामतीर्थ यह भजन बिल्कुल तल्लीन होकर गा रहे थे और उनकी आँखों से आँसू झर रहे थे। उस समय उनके चेहरे से अलौकिक तेज बरस रहा था। मौलवी साहब स्वामी रामतीर्थ की उस तल्लीनता, भगवत्प्रेम और भगवत्समर्पण से बहुत प्रभावित हुए। भजन समाप्त होते ही मौलवी अपनी जगह से उठे और स्वामी रामतीर्थ के पास पहुँचकर अपने वस्त्रों में छुपाया हुआ एक खंजर (कटार) निकालकर उनके कदमों में रख दिया और बोले : ''हे राम! आप सचमुच राम हैं, मैं आज इस वक्त बहुत बुरी नीयत से आपके पास आया था। मैं आपका गुनहगार हूँ। मुझे माफ कर दीजिये। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।''

स्वामी रामतीर्थ मुस्कराये और बोले : ''क्यों गंदा बंदा बनता है? जो तू है वही तो मैं हूँ। मैं तुझसे अलग कब हूँ? जा, आइंदा किसीसे भी नफरत मत करना क्योंकि सबके भीतर वही सर्वव्यापी खुदा मौजूद है। हालाँकि तू उससे बेखबर है, पर वह तेरी हर बात को जानता है। अपने खयालात पवित्र रख। खुदी को भूल जा और खुदा को याद रख, जो तेरे नजदीक से भी नजदीक है, यानी जो तू खुद है।''- ऐसा कहकर स्वामीजी ने बहुत प्यार से मौलवी के सिर पर हाथ फेरा और मौलवी अपना सिर स्वामीजी के चरणों पर रख बच्चों की तरह रोने लगे। रोते-रोते मौलवी की आँखें लाल हो गयीं। वे किसी प्रकार से भी स्वामीजी के चरण छोड़ नहीं रहे थे। बस, एक ही रट लगा रखी थी : ''मुझे माफ कर दीजिये, मुझे माफ कर दीजिये।'' बड़ी मुश्किल से उन्हें शांत किया गया। तबसे वह मौलवी मुहम्मद मुर्तजा अली खाँ उनका अनन्य भक्त हो गया। उसने अपने-आपको स्वामीजी के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया और उसका जीवन भक्तिमय हो गया।

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष सभीके आत्मीय स्वजन हैं। वे किसीको भी अपने से अलग नहीं देखते और प्राणिमात्र पर अपनी करुणा-कृपा रखते हैं। वे सभीका आत्मोत्थान चाहते हैं। वे हमारे अंतःकरण में भरे कूड़े-कचरे को अपने उपदेशों द्वारा बाहर निकाल फेंकते हैं और हमारे हृदय को निर्मल व पवित्र बना देते हैं। वे हमें जीवन जीने की सही राह दिखाते हैं और जीवन को जीवनदाता भगवान की ओर ले जाते हैं।

स्वामी रामतीर्थ का रसमय जीवन आज भी दिख रहा है - कहीं कोई बापूजी कहता है, कोई साँई कहता है परंतु अठखेलियाँ वही सच्चिदानंद की... सभीको हरिनाम के द्वारा अपने ब्रह्मसुख का रस प्रदान करनेवाले ऐसे कौन हैं इस समय? जान गये, मान गये, पहचान गये - स्वामी रामतीर्थ का प्यार, भले नाम बदलकर, वही तो बाँट रहा है!
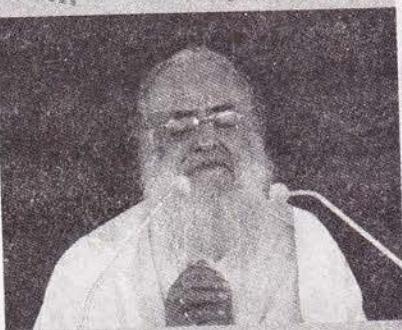
लौकिक, दैवी और आध्यात्मिक

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

शाश्वत सुख की मानवीय माँग की पहचान और उसकी पूर्ति करानेवाला महोत्सव है - गुरुपूर्णिमा। यह आषाढ़ी पूर्णिमा को मनाया जाता है तथा इसका बड़ा भारी महत्त्व है।

यह उत्सव सब उत्सवों का सिरताज है। अन्य उत्सव तो लौकिक होते हैं, दैविक होते हैं परंतु यह तो आध्यात्मिकता से भरा हुआ, लौकिकता को सजाता हुआ और दैविक रहस्य बताता हुआ उत्सव है। यह उत्सव व्रत भी है और पर्व भी। यह सर्वोत्तम सुख - आत्मसुख के द्वार खोलने का पर्व है। भारतीय संस्कृति के प्रमुख चालीस पर्वों में यह पर्व इस महान संस्कृति का प्रसाद बाँटनेवाला महास्तंभ है।

भगवान वेदव्यासजी का जन्म आज ही के दिन हुआ था, इसलिए इस पर्व को व्यासपूर्णिमा भी कहते हैं। वेदव्यासजी में इतना बल, सामर्थ्य तथा मानवीय माँग को जानने की इतनी योग्यता थी कि उन्होंने वेदों का विभाजन किया तथा अठारह पुराण, अठारह उपपुराण, विश्व का सर्वप्रथम आर्षग्रंथ ब्रह्मसूत्र, पंचम वेद 'महाभारत' आदि की रचना की। विश्वमानव के मंगल की जो कोई सीख और उपदेश है, वह किसी भी धर्म या मजहब में हो, सीधा-अनसीधा भगवान वेदव्यासजी का ही प्रसाद है। इस विषय में यह उक्ति बहुत प्रसिद्ध है :

व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।

गुरुपूर्णिमा पर्व गुरुपूजन के साथ-साथ उपवास-तप-साधना का पर्व है। इस दिन गुरुभक्त गुरुपूजन के बाद ही कुछ खाते हैं। यह पर्व लघु जीवन और लघु आदतों से ऊपर उठाकर शाश्वत सुख, गुरु सुख और शाश्वत जीवन देनेवाला महापर्व है।

तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्तताम्।
नास्ति तीर्थं गुरुसमं बन्धनक्षेद्ध कर्म दिव्यम्॥

'संसार में भटकनेवाले मनुष्यों को तारने के लिए गुरुदेव के समान बंधननाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है।'

हममें पहले से भरी गलत-सलत आदतों-विचारों को खोजकर बाहर निकालना और फिर अमृत-सदृश उत्तम-उत्तम आचार-विचार भरना - ये दो कार्य गुरु करते हैं। आत्मप्राप्ति की यात्रा तो करवा दें परंतु उसमें श्रम का एहसास न होने दें, ऐसे होते हैं अनुभवसपन्न महापुरुष - गुरु। लघु नहीं गुरु... ऊँची समझ के, ऊँचे सामर्थ्य के, ऊँचे आनंद के धनी। ऐसे गुरु का सान्निध्य मिलने पर शिष्य को पता ही नहीं चलता कि उसने कितनी पीढ़ियों को तारनेवाली साधना कर ली। **हँसिबो खेलिबो धरिबो ध्यान।** हँसते-खेलते उनका चिंतन ध्यान बन जाता है।

गुरु की उपासना परमात्मा की उपासना से कम नहीं है। श्री वल्लभाचार्यजी ने कहा है : 'भगवान में तो तीस दिव्य गुण हैं परंतु भगवान को पाये हुए गुरु में छत्तीस दिव्य गुण होते हैं।' संत सहजोबाई कहती हैं :

भगवान करें कि सबकी भगवान में प्रीति हो, सब परस्पर मिल-जुलकर रहें और 'परस्परदेवो भव', 'तुझमें राम मुझमें राम सबमें राम समाया है' की सद्भावना विकसित हो। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। 'दूसरों के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जो हम अपने प्रति नहीं चाहते।' यह व्यासजी का संदेश घर-घर में पहुँचे, देश-विदेश में पहुँचे, जन-जन तक पहुँचे और मानव संयमी, सदाचारी व दिव्य आत्मा बने।

उन्नति का पर्व : गुरुपूर्णिमा

हरि ने जन्म दियो जगमाहीं। गुरु ने आवागमन छुटाहीं ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतमरूप लखायौ ॥

'हरि ने तो हमको माया के बंधन में बाँधकर यहाँ भेजा परंतु सद्गुरु ने यह बंधन काटकर आवागमन के चक्र से मुक्त कर दिया। हरि ने तो कर्ताभाव का भ्रम पैदा करके भ्रमित किया परंतु सद्गुरु ने कर्म-बंधन काटकर आत्मस्वरूप का अनुभव करा दिया।'

संत रज्जबजी कहते हैं :

जन्म सफल तब भया, चरणु चित्त लाया।
रज्जब राम दया करि, दादू गुरु पाया ॥

संत दादूजी को रज्जबजी शिष्य रूप में मिल गये, योगी मत्स्येंद्रनाथजी को योगी गोरखनाथजी, श्री गोविंदपादाचार्यजी को श्री शंकराचार्यजी, श्री ईश्वरपुरी महाराज को श्री चैतन्य महाप्रभु और श्री निवृत्तिनाथजी को श्री ज्ञानेश्वरजी महाराज मिल गये। संत जनार्दन स्वामी को श्री एकनाथजी महाराज मिले और श्री एकनाथजी महाराज को पूरणपोड़ा (गावबा) मिले।

इस प्रकार यह ईश्वरीय विद्या, आत्मविद्या गुरु-शिष्य परंपरा से एक से दूसरे को, दूसरे से तीसरे को प्राप्त होती आयी है और समाज का मंगल करती आयी है।

यह व्यासपूर्णिमा भगवान वेदव्यासजी की अद्भुत शक्ति, कृपा और मानवीय प्रज्ञा की स्मृति में मनायी जाती है। मनुष्य छोटे-छोटे (तुच्छ) सुख-दुःख में विचलित न हो जाय, उसे छोटी-छोटी (तुच्छ) वस्तुएँ इकट्ठी कर ढेर करके मर जाने में ही सार न दिखे, अपितु मौत का बाप भी जिसे नहीं छीन सकता उस अमर आत्मा का साक्षात्कार करने की ओर वह चल पड़े ऐसी व्यवस्था जिस पर्व में है, वह है यह व्यास पर्व, गुरु पर्व, आषाढ़ी पर्व। संन्यासी आषाढ़ी पूर्णिमा से चतुर्मास-व्रत आरंभ करते हैं।

व्यासपूर्णिमा मनाने से वर्षभर की पूर्णिमाएँ मनाने का पुण्य मिलता है। जैसे शालग्राम को हम भगवान नारायण के रूप में मानते हैं, मूर्ति को भगवान के रूप में मानते हैं ऐसे ही साधक अपने-अपने सद्गुरु को भगवान वेदव्यासजी के रूप में, शरीर रूप में नहीं आत्मा रूप में मानें और उनका सान्निध्य प्राप्त करें तो उन्हें अक्षय पुण्य की, अक्षय ज्ञान की प्राप्ति होगी।

धरती पर ऐसे व्यासस्वरूप महापुरुषों का पूजन तब तक होता रहेगा जब तक लोगों को सच्चे सुख की, सच्चे स्वास्थ्य की, सच्चे ज्ञान की आवश्यकता महसूस होगी।

व्यासपूर्णिमा की आप सबको खूब-खूब बधाई हो। भगवान करें कि सबकी भगवान में प्रीति हो, सब परस्पर मिल-जुलकर रहें और '**परस्परदेवो भव**', '**तुझमें राम मुझमें राम सबमें राम समाया है**' की सद्भावना विकसित हो। **आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।** 'दूसरों के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जो हम अपने प्रति नहीं चाहते।' यह व्यासजी का संदेश घर-घर में पहुँचे, देश-विदेश में पहुँचे, जन-जन तक पहुँचे और मानव संयमी, सदाचारी व दिव्य आत्मा बने।
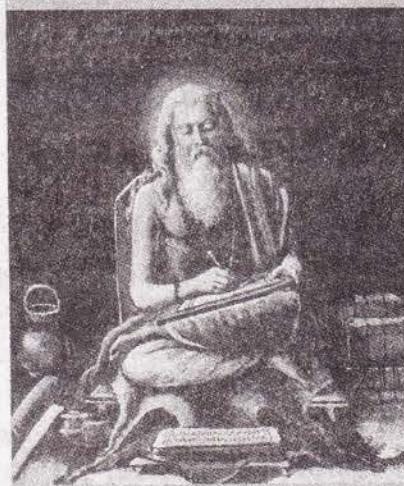
भगवान वेदव्यासजी

वेदव्यासजी ने वेदों का विभाजन किया तथा अठारह पुराण, अठारह उपपुराण, विश्व का सर्वप्रथम आर्षग्रंथ ब्रह्मसूत्र, पंचम वेद 'महाभारत' आदि की रचना की। विश्वमानव के मंगल की जो कोई सीख और उपदेश है, वह किसी भी धर्म या मजहब में हो, सीधा-अनसीधा भगवान वेदव्यासजी का ही प्रसाद है। इस विषय में यह उक्ति बहुत प्रसिद्ध है : व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।

कठिनाइयें

पुरुषार्थी मनुष्य कठिनाइयों से घबराता नहीं बल्कि उनका स्वागत करता है, उन्हें जीवनरूपी पाठशाला का प्रेरणादायी अध्याय मानता है। संसार के सभी महान एवं उन्नत पुरुष कठिनाइयों की शिक्षा से ही शिक्षित हुए हैं । कठिनाइयों के द्वारा ही उनका मस्तिष्क विकसित होकर ज्ञान-विज्ञान की चरम सीमा तक पहुँच सका। यदि जीवन में कठिनाइयाँ न हों, विपत्तियाँ न आयें तो मनुष्य का जीवन नितांत निष्क्रिय, निरुत्साहपूर्ण, सुखभोगी और विलासी बन जाय।

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम्।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥

'जो अपने पुरुषार्थ से दैव को मजबूर कर देने में समर्थ है, वह मनुष्य दैवी आपदाओं से कभी खिन्न नहीं होता।' **(वाल्मीकि रामायण)**

जिस प्रकार पर्वत से निकला हुआ झरना सामने आनेवाली शिलाओं और पत्थरों को तोड़ते-फोड़ते हुए आखिर अपना मार्ग बना ही लेता है, उसी प्रकार दृढ़ इच्छाशक्तिवाला साहसी पुरुष सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं को मात देकर अंत में सफलता के उच्च शिखर तक पहुँच ही जाता है।

आप चाहे कैसी भी परिस्थिति में हों, सदैव दृढ़ पुरुषार्थ व आत्मबल से आगे बढ़ने का प्रयत्न करते रहिये। कठिनाइयों और विपत्तियों से घबराइये नहीं। जब आप इन पर विजय प्राप्त करेंगे तो आपको अपना बढ़ता हुआ पौरुष एवं साहस देखकर बड़ा आनंद मिलेगा और आपका आत्मविश्वास बढ़ेगा। कष्टों एवं विपत्तियों का सामना करते हुए उनके विरुद्ध डटे रहने से आपकी उन्नति होगी। आप जीवन की साधारण अवस्था से ऊपर उठ जायेंगे।

वेद भगवान आदेश देते हैं :

उद्यानं ते पुरुषः नावयानम्।

अर्थात् हे मनुष्यो ! ऊपर उठो, आगे बढ़ो, उन्नति करो, नीचे मत गिरो, पतन की ओर मत जाओ। वीरता, धीरता और गंभीरता के साथ अपने कर्तव्य-पथ पर बढ़े चलो।

भगवत्प्रार्थना और पुरुषार्थ से अपनी कमियों को मिटाकर अपनी अमरता का अनुभव करो। अपने शुद्ध, बुद्ध आनंदस्वरूप में जागना ही तो पुरुषार्थ है। देहभाव, भोगभाव से बचकर संयमी, सदाचारी, परोपकारी बनना और ब्रह्मसुख को पाना ही तो पुरुषार्थ है। शाश्वत दिव्य आनंद, नित्य नवीन रस एवं दिव्य प्रेरणा देनेवाले प्रभु में शांत, समाहित होना और निर्लेप, अकर्ता-अभोक्ता भाव से संसार में व्यवहार करना ही तो पुरुषार्थ है। जो कर्ता-भोक्ता होकर व्यवहार करता है वह तो बंधन ही बनाता है बेचारा ! अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व भाव में स्थित पुरुष तो देवताओं से भी सम्मानित होता है। आत्मसुख के आगे उसे स्वर्ग-सुख भी तुच्छ लगता है।

धन्य हैं आत्मनिष्ठ महापुरुष और उनमें श्रद्धा-प्रीति रखनेवाले, उनको समझनेवाले सत्शिष्य !

धैर्य रखो, साहसी बनो। यदि मार्ग पर चलते हुए विघ्न-बाधाएँ और संकट आते हैं तो बुद्धिपूर्वक उनसे पसार होने की कला जान लो। उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम पूर्वक उनके सिर पर पैर रखकर

जिस प्रकार पर्वत से निकला हुआ झरना सामने आनेवाली शिलाओं और पत्थरों को तोड़ते-फोड़ते हुए आखिर अपना मार्ग बना ही लेता है, उसी प्रकार दृढ़ इच्छाशक्तिवाला साहसी पुरुष सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं को मात देकर अंत में सफलता के उच्च शिखर तक पहुँच ही जाता है।

हमें मजबूत बनाती हैं

आगे बढ़ो।

पवित्रात्माओ ! यदि आपत्तियाँ और विपत्तियाँ न हों तो हम अपना जीवन-निर्माण कैसे कर सकते हैं ? कठिनाइयों पर ही तो विजय पानी है । वे ही तो आपके पौरुष की कसौटियाँ हैं । वे तो आपके गले में जयमाला डालकर आपको विजय-सिंहासन पर बिठाने की प्रतीक्षा कर रही हैं। वे ही तो आपको इतिहास बनाने का अवसर दे रही हैं । कठिनाई को चेतनता की औषधि मानो। कठिनाइयाँ न हों तो हमें वीर कौन कहेगा, सफल कौन कहेगा ? सुविधा के झूले में वीर नहीं पलता। सच्चे कर्मवीर विघ्न-बाधाओं से घबराते नहीं।

देखकर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग्य के, दुःख भोग पछताते नहीं ॥

आप जहाँ भी हों, जिस स्थिति में हों निश्चय करो : 'मैं दृढ़ हूँ, मैं पीछे नहीं हटूँगा। मैं सत्य के समान अडिग हूँ, मैं अग्नि के समान सामर्थ्यवान हूँ, मैं साहस का पुतला हूँ, मैं पुरुषार्थ करके अपने कार्य में निश्चित ही सफल होऊँगा।'

तुम अग्नि की भीषण लपट, जलते हुए अंगार हो ।
तुम चंचला की द्युति चपल, तीखी प्रखर असिधार हो ॥
तुम खौलती जलनिधि-लहर, गतिमय पवन उनचास हो।
तुम इन्द्र के दुर्दम्य पवि[१], तुम चिर अमर बलिदान हो ॥

महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई तथा राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, शहीद भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि ने कितनी कठिनाइयों का सामना किया ! स्वामी रामतीर्थ, कबीरजी, संत ज्ञानेश्वर, मीराबाई, साँईं लीलाशाहजी महाराज आदि संतों ने कितने कष्ट उठाये ! कसौटी हमेशा कंचन की ही होती है। वे वीर पुरुष कठिनाइयों से कभी घबराये नहीं । हे वत्स ! आपकी नसों में उन्हीं वीरों का रक्त बह रहा है, आपमें वे ही संस्कार हैं। अब उठो और कठिनाइयों से लोहा लेने के लिए तैयार हो जाओ...

१. वज्र

बहूपयोगी मंत्र-रत्न पिटारी

(१) भयनिवारक मंत्र व उपाय :

आजकल कई लोगों को बाह्य परिस्थितियों से तथा अपने-आपसे सतत भय बना रहता है कि 'पता नहीं कब क्या हो जाय... मैं क्या-का-क्या कर बैठूँ...' यह एक प्रकार का मनोरोग है जो समाज में तेजी-से बढ़ रहा है। इससे पीड़ित अनेक लोगों के पत्र आश्रम में आते हैं। इससे निजात पाने के इच्छुक सभी लोगों को एक साथ उत्तर मिले, इस हेतु यहाँ उनके लिए एक मंत्र एवं अन्य सरल उपाय प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

१. निम्न भयनिवारक मंत्र का प्रतिदिन ५ माला जप करें। इससे उपरोक्त प्रकार का भय दूर होकर व्यक्ति निर्भय हो जाता है।

ॐ क्षीं क्षीं क्षीं क्षीं क्षीं फट्।

२. सामने जल रखकर श्रद्धापूर्वक 'श्रीगुरुगीता' का पाठ करें और वह जल मनोरुग्ण को पिला दें।

३. 'जीवन रसायन' पुस्तक जेब में रखें व जब भी भय का विचार मन में आये, तब इसे जेब से निकालकर इस शक्तिप्रद टॉनिक के दो घूँट भर लें। इससे आप तत्काल आंतरिक बल का अनुभव करेंगे। यह पुस्तक आत्महीनता की भावना (इन्फीरियोरिटी कॉम्पलेक्स) तथा अवसाद (डिप्रेशन) से ग्रस्त लोगों के लिए भी प्रसादरूप साबित हुई है।

('श्रीगुरुगीता' एवं 'जीवन रसायन' पुस्तकें आश्रम व आश्रम की समितियों के सभी सेवा-केन्द्रों पर उपलब्ध हैं।)

(२) *बालकों हेतु :* बालक के हाथ व पैर में लोहे या ताँबे का कड़ा पहनाने से उसे नजर-डीठ आदि का भय नहीं रहता व दाँत आसानी से निकल आते हैं।

भगवत्प्राप्ति के उपाय

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

परमात्मा को पाने के लिए महापुरुषों ने शास्त्रों में कई उपाय बताये हैं। उन उपायों में से किसी भी एक को अपनाकर मनुष्य भगवत्प्राप्ति कर सकता है।

'श्रीमद्भागवत' के सप्तम स्कंध के पाँचवें अध्याय के बाईसवें श्लोक में दैत्यराज हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद से पूछते हैं कि ''बेटा प्रह्लाद ! तुमने इतने दिन गुरुजी से जो शिक्षा प्राप्त की है, उसमें से कोई अच्छी-सी बात हमें सुनाओ।''

प्रह्लादजी बोले : ''पिताजी ! भगवद्भक्ति ही सर्वोपरि है और उसके नौ प्रकार हैं :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

भगवान के गुण, लीला, नाम आदि का श्रवण, उन्हींका कीर्तन, उनके रूप-नामादि का स्मरण, उनके चरणों की सेवा, उनका पूजन-अर्चन, वंदन, दास्य अर्थात् अपने को उनका दास मानना, सख्य अर्थात् भगवान को अपना सखा मान उन्हींमें अपनी प्रीति स्थापित करना तथा आत्मनिवेदन अर्थात् अपने-आपको पूर्णरूपेण उन्हींको समर्पित कर देना।''

(श्रीमद्भागवत : ७.५.२३)

इन नौ प्रकारों की भक्ति से, इन उपायों से कोई भी व्यक्ति सहजता से भगवान को पा सकता है। जो इन नौ उपायों से ईश्वर को नहीं पा सकते उनके लिए सत्पुरुषों ने आठ उपाय बताये हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

अगर ये आठ उपाय भी आप नहीं कर सकते तो भगवत्प्राप्ति के लिए सात उपाय और हैं :

इस असार संसार में सात वस्तु हैं सार।
संग, भजन, सेवा, दया, ध्यान, दैन्य और उपकार ॥

संतों का संग, भगवान का भजन, सेवा में तत्परता, स्वभाव में दया, भगवद्ध्यान, नम्रता और परोपकार।

अगर कोई ये सात साधन भी न कर सके तो उसके लिए ये छः साधन हैं :

संध्या, पूजा, यज्ञ, तप, दया, सुसात्त्विक दान।
इन छः के आचरण से निश्चय हो कल्याण ॥

त्रिकाल (सुबह, दोपहर और शाम तीनों समय) संध्या, भगवत्पूजन-स्मरण, यज्ञ, तप, दया और प्रतिफल की अपेक्षा न रखते हुए दीनों को दान देना।

भूखे को अन्न देना, प्यासे को पानी देना, भूले को राह दिखाना, जप-तप करना, सज्जनता का व्यवहार करना ये सभी कर्म यज्ञ हो जाते हैं।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

'यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करनेवाले हैं।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १८.५)

और पवित्र बुद्धि में ही आदिपुरुष परमात्मा को पाने की प्यास जगती है।

अगर कोई इन छः साधनों से भी ईश्वर को नहीं पा सकता तो उसके लिए ईश्वरप्राप्ति के पाँच साधन हैं :

गोविंद, गायत्री, गौ, गीता और गंगा-स्नान।
इन पाँचों की कृपा से शीघ्र मिलें भगवान ॥

भगवान गोविंद का ध्यान-स्मरण, गायत्री का जप, गौसेवा, गीता का पठन-मनन और गंगा-स्नान।

अगर आप इन पाँच साधनों से भी ईश्वर को नहीं पा सकते हैं तो आपको ये चार साधन ईश्वरप्राप्ति में सहायक हो सकते हैं :

संयम, सेवा, साधना, सत्पुरुषों का संग।
ये चारों करते तुरंत मोहनिशा का भंग ॥

जीवन में संयम, सेवा, साधना और सत्पुरुषों का सान्निध्य - ये चार साधन जीव और ईश्वर के बीच के अज्ञान के पर्दे को हटा देते हैं व जीव को उसके वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति करा देते हैं।

अगर इन चार साधनों से भी आप ईश्वर को नहीं पा सकते तो महापुरुषों ने भगवत्प्राप्ति के लिए तीन उपाय बताये हैं :

सत्यवचन, आधीनता, परस्त्रीमात समान।

सदैव सत्य बोलें व सत्ययुक्त आचरण करें, भगवान के अधीन हो जायें और परायी स्त्री को माता के समान देखें।

अगर आप ये तीन साधन भी नहीं कर सकते हैं तो इन दो साधनों से भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है।

दो बातन को भूल मत जो चाहत कल्याण।
नारायण इक मौत को दूजो श्री भगवान ॥

मृत्यु अवश्य आयेगी और कभी भी, कहीं भी आ सकती है। इसलिए सदैव भगवत्स्मृति बनाये रखें। जप, ध्यान, सुमिरन से भगवत्प्रीति बढ़ाते रहें, इससे शीघ्र कल्याण हो जायेगा।

अगर आप इन दो साधनों से भी ईश्वर को नहीं पा सकते हैं तो फिर एक ही उपाय है :

तन-मन से, सच्चाई से भगवान की शरण हो जायें। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १८.६६)

इनमें से किसी भी एक उपाय को अपने जीवन में दृढ़ता से पकड़ लो। जीवन के प्लेटफार्म पर नौ-नौ गाड़ियाँ खड़ी हैं, किसीमें भी बैठ जाओ। सब मोक्ष तक ले जाती हैं।

मनुष्य का वास्तविक ध्येय है ईश्वरप्राप्ति। सारे ब्रह्मांड में किसी भी वस्तु की प्राप्ति ईश्वरप्राप्ति के आगे मायना नहीं रखती। ईश्वरप्राप्ति ही सार है, वास्तविक धन है।

परमात्मा को पाने के लिए महापुरुषों ने शास्त्रों में कई उपाय बताये हैं। इनमें से किसी भी एक उपाय को अपने जीवन में दृढ़ता से पकड़ लो। जीवन के प्लेटफार्म पर नौ-नौ गाड़ियाँ खड़ी हैं, किसीमें भी बैठ जाओ। सब मोक्ष तक ले जाती हैं।

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई

कुछ साधु यात्रा करने निकले । राजस्थान के गागरोनगढ़ में, जहाँ राजाधिराज पीपाजी राज्य करते थे, वहाँ उन साधुओं ने दो दिन निवास किया। राजा पीपाजी ने उन साधुओं को सीधा-सामान तो भिजवाया परंतु स्वयं उनके दर्शन करने नहीं गये।

साधुओं ने देखा कि 'राजा पीपाजी भगवती काली के भक्त हैं परंतु भगवती जिस परमात्मा की सत्ता से भगवती हैं उस परमात्मा को प्राप्त संतों के प्रति अनुराग इनके जीवन में नहीं आया।' साधुओं ने भोजन तो किया परंतु राजा पीपाजी पर कृपा बरसाने के लिए थोड़े रुष्ट-से होकर उनके पास गये और कहा : ''राजन् ! तुम प्रजा का तथा साधुओं का ख्याल तो रखते हो परंतु प्रभु की भक्ति में अभी तुम्हारा दृढ़ अनुराग नहीं है। हम चाहते हैं कि भगवान तुम्हें संतों का संग दें और अपनी भक्ति का रंग दें।''

साधुओं ने माँ काली से प्रार्थना की कि ''माँ ! तू अपने भक्त पर कृपा कर । तेरा यह पुत्र सत्संग के रस से, ब्रह्मज्ञान-आत्मज्ञान के रस से वंचित न रह जाय, इसे सत्संग का रस पिला दे मातेश्वरी!''

माँ काली ने रात्रि को स्वप्न में राजा पीपाजी को दर्शन दिये और खूब डाँटा कि ''पीपा ! तुम मेरी भक्ति तो करते हो परंतु संतों के दर्शन के लिए नहीं जाते हो । संतों के दर्शन के बिना तुम अभागे रह जाओगे। सत्संग से वंचित, सद्गुरु की कृपा से वंचित हो मेरी अधूरी प्रार्थना-पूजा से तुम क्या पा लोगे ? दुनिया में तुमने सराहनीय काम तो किये हैं परंतु कब तक कर्ता बने रहोगे ? जो कर्ता बनता है वह पाप और पुण्य का भोक्ता बना रहता है तथा स्वर्ग और नरक में एवं नाना योनियों में भटकता रहता है।

हे पीपा ! जब तक तुम सद्गुरु का सत्संग व उनकी कृपा नहीं पाओगे, तब तक तुम्हें 'मैं गागरोनगढ़ का राजा हूँ, यह मेरा राज्य है और बाकी का राज्य दूसरों का है'- ऐसा भ्रम बना रहेगा। सद्गुरु की कृपा से तुम, जो सभी राज्यों का राजाधिराज है उस परमात्मा से सीधा नाता जोड़ोगे तो यह भ्रम नष्ट हो जायेगा।''

पीपाजी सपने से जागकर ''माँ ! माँ ! क्षम्यताम्, क्षम्यताम् मातेश्वरी ! क्षम्यताम् देवेश्वरी !'' कहते-कहते रात्रि में ही भगवती के मंदिर की ओर दौड़े और निर्दोष बालक की नाईं माँ के चरणों में पड़ गये।

जैसे माँ काली ने श्री रामकृष्ण परमहंस को सत्संग दिलाने के लिए गुरु तोतापुरीजी के चरणों में भेजा था, ऐसे ही माँ ने गागरोनगढ़ के प्रतापी राजा पीपाजी को काशी संत-मंडली के आचार्य गुरु रामानंद स्वामीजी के पास भेज दिया।

पीपाजी गागरोनगढ़ की राज्य-व्यवस्था सुयोग्य मंत्रियों के हाथों सौंप स्वयं साधना की दीक्षा-शिक्षा और सत्संग पाने के लिए काशी चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने रामानंद स्वामीजी के सेवकों से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि ''मैं गागरोनगढ़ से आया दास पीपा, गुरुजी के चरणों में दीक्षा-शिक्षा और सत्संग चाहता हूँ।''

सेवकों ने रामानंद स्वामीजी को समाचार दिया कि ''गागरोनगढ़ के नरेश पीपाजी आपका दर्शन-सत्संग चाहते हैं।''

रामानंदजी बोले :
''वह मुझे गुरु कैसे मान लेता है ?
अगर गुरु माना है तो
जाकर कुएँ में गिरे।''
कठोर परीक्षा थी। दर्शन नहीं मिले थे,
मंत्र नहीं मिला था और
परीक्षा चालू हो गयी थी।

स्वामीजी बोले : ''मना कर दो। हम राजाओं से नहीं मिलते । राजा लोग बोलते कुछ हैं और करते कुछ और हैं। हम ऐसे ठगों से नहीं मिलना चाहते।''

पीपाजी ने कहा : ''भले गुरुजी मुझे स्वीकार नहीं कर रहे हैं परंतु मैंने उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया है। मैं उनका सेवक हूँ, शिष्य हूँ, उनकी जो आज्ञा होगी वह मुझे शिरोधार्य है। मैं उनके चरणों में सिर झुकाये बिना, उनका प्रसाद लिये बिना वापस नहीं जा सकता।''

सेवकों ने रामानंदजी को सारी बात बता दी।

रामानंदजी बोले : ''वह मुझे गुरु कैसे मान लेता है ? अगर गुरु माना है तो जाकर कुएँ में गिरे।''

कठोर परीक्षा थी। दर्शन नहीं मिले थे, मंत्र नहीं मिला था और परीक्षा चालू हो गयी थी। राजस्थान का वह वीर जब राजा-महाराजाओं के राजा रामानंद स्वामीजी को गुरु मान चुका था तो **'आज्ञा सम नहीं साहिब सेवा।'** उक्ति को चरितार्थ करते हुए कुएँ की तरफ दौड़ा परंतु गुरु के संकेत के अनुसार सेवकों ने पीपाजी को रोक लिया।

गुरुजी बोल उठे : ''सफल ! सफल ! सफल ! राजा पीपा ! आओ बेटा ! मैंने तुमको स्वीकार कर लिया।''

पीपाजी ने गुरुजी के चरणों में प्रणाम किया। गुरुजी ने थोड़ा सत्संग देते हुए कहा : ''पीपा ! सभी व्यक्ति रस चाहते हैं किंतु सच्चा रस न मिलने के कारण विषय-विकारों के तुच्छ सुख में गिरते हैं, पर जो आर्य हैं अर्थात् अपने वास्तविक कर्तव्य के प्रति पूरी निष्ठा और श्रद्धा रखते हैं, वे ही सच्चे सुख को पाने के अधिकारी हैं। पीपा ! तुम्हारा आचरण आर्यों जैसा है, इसलिए तुम सच्ची भक्ति के, सच्चे सुख के, सच्चे जीवन के अधिकारी बन रहे हो।''

दीक्षा का समय हुआ और गुरुजी ने पीपाजी को उनमें भगवान की भक्ति, उनका ज्ञान, उनका प्रेम प्रकट हो ऐसी दीक्षा दे दी।

पीपाजी साधु होना चाहते थे परंतु रामानंद स्वामीजी ने कहा : ''जो जगत के सुख के बजाय जगदीश्वर के सुख को पाना चाहता है, वही साधु है और पीपा ! तुम राजकाज करते हुए भी नियम-निष्ठा से जप, प्राणायाम व ध्यान करना और विषय-विकारों के सुख के गुलाम मत बनना। तुम सुख के भोक्ता नहीं अपितु सुख के दाता बनना।

देश में विधर्मियों द्वारा अत्याचार हो रहा है। अधिकारी रिश्वत ले रहे हैं, प्रजापालन के बदले प्रजा का शोषण कर रहे हैं और स्वयं भी विलास में डूबकर शोषित हो रहे हैं। इससे सज्जन दुःख पा रहे हैं व दुर्जन समाज पर हावी हो रहे हैं। तुम सज्जनों का हौसला बुलंद करो, संगठित होकर दुर्जनों से लोहा लो और राजस्थान-गुजरात में भक्तिरस व सदाचार का संगीत गुँजा दो।''

राजा पीपाजी काशी से गागरोनगढ़ लौटे। देखने में तो वे वैसे-के-वैसे थे परंतु अंदर से महाराज पीपा हो गये थे, साधु पीपा हो गये थे। अब तो वे हर बात का विशेष ध्यान रखने लगे थे। वे कोई भी कार्य वाहवाही के लिए नहीं बल्कि लोक-मांगल्य के लिए करते और वाहवाही होने पर गर्व से फूलते नहीं थे। अब उनके चित्त में वैर-वृत्ति नहीं थी तथा प्रजापालन की वृत्ति बढ़ गयी थी। उनकी उत्तम राज्य-व्यवस्था से लोगों के चेहरों पर चमक आने लगी, उनके दिल विकसित होने लगे।

राज्य में ठीक से वर्षा होने लगी, सज्जन मंत्रियों का हौसला बुलंद हुआ, दुर्जन काँपने लगे, उनकी अपराध-वृत्ति क्षीण होने लगी, धूर्त लोगों के धंधे बंद होने लगे, स्त्रियाँ इज्जत-आबरू व प्रसन्नता से पूर्ण जीवन जीने लगीं, बच्चे माँ-बाप के आज्ञाकारी होने लगे, विद्यालयों में शिक्षकों की हाजिरी ईमानदारी से होने लगी, पंडित सुंदर सीख देने लगे तथा सर्वत्र प्रेमाभक्ति का प्रचार होने लगा।

गागरोनगढ़ अब प्रभु का गढ़ बन गया। उसमें फैली भक्ति की यह सुवास राजस्थान-गुजरात की सीमाओं को लाँघकर काशी में गुरु रामानंदजी तक पहुँची। उन्होंने निर्णय किया कि 'हम पीपा के अतिथि होंगे।' और वे चल पड़े गागरोनगढ़ की ओर। राजा को पता चला कि गुरुजी आ रहे हैं। राजाधिराज पीपाजी तो नंगे पैर दौड़े, हृदय भाव-भक्ति से भर गया कि 'भगवान से प्रेम करानेवाले, प्रभु के सच्चे प्रेमी मेरे सद्गुरु आ रहे हैं... जिन्होंने मुझे मेरे गुरुजी के आगमन का समाचार सुनाया उन पर मैं ये मोतियों के हार कुर्बान कर दूँ। जिस रथ पर मेरे प्राणेश्वर आ रहे हैं उसके पहियों को मैं प्रणाम कर चुंबन कर लूँ कि तुम मेरे सद्गुरुदेव को ले आये हो...'

गुरुजी का रथ गागरोनगढ़ पहुँचा। भक्त पीपाजी ने गुरुजी का यथायोग्य आतिथ्य किया। गुरुजी की ओर एकटक देखते-देखते, उनका सत्संग सुनते-सुनते पीपाजी का भक्तिभाव और बढ़ गया।

कुछ दिन वहाँ रहने के बाद रामानंद स्वामी ने द्वारका जाना चाहा। पीपाजी भी उनके साथ जाने के लिए निकले। उनकी रानियों ने भी साथ जाना चाहा परंतु पीपाजी उन्हें साथ नहीं ले जाना चाहते थे। आखिर गुरु-आज्ञानुसार पीपाजी अपनी अत्यंत

भक्त पीपाजी

पीपाजी ने समुद्र में छलाँग लगा दी और भक्तवत्सल द्वारकाधीश ने अपने प्यारे भक्त को अपनी गोद में ले लिया। द्वारकाधीश ने उनसे कहा : ''पीपा ! लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे कि मैंने तुम्हें अपनी गोद में ले लिया था, इसलिए तुम मेरी यह छाप (निशानी) ले जाओ।''

पवित्र संस्कारोंवाली रानी सीता देवी को साथ ले चले। राजा-रानी दोनों ने गुरुजी से साधुता की दीक्षा ले ली। फिर दोनों ने एक-दूसरे को कभी कामविकार की दृष्टि से न देखा, न छुआ।

रामानंदजी के काशी जाने के लिए तैयार हो जाने पर पीपाजी ने उनसे द्वारका में ही रहने की अनुमति ले ली। अब पीपाजी के मन में द्वारकाधीश के दर्शन की तड़प जगी। उन्होंने 'द्वारकाधीश मंदिर' के पुजारी के आगे हाथा-जोड़ी की कि ''मुझे भगवान द्वारकाधीश के दर्शन करने हैं।''

भगवान के दर्शन की तड़प जगे तो सात दिन में भगवान प्रकट हो सकते हैं, चार दिन या एक दिन में भी हो सकते हैं; जितनी तीव्र भगवद्दर्शन की भूख उतने भगवान आसान!

पुजारी ने कहा : ''द्वारकाधीश तो समुद्र में समा गये। अगर तुम्हारी श्रद्धा पक्की है तो मारो समुंद्र में छलाँग। भगवान तुमसे अछूते नहीं रह सकते, तुम्हें जरूर मिलेंगे।''

पीपाजी ने समुद्र में छलाँग लगा दी और भक्तवत्सल द्वारकाधीश ने अपने प्यारे भक्त को अपनी गोद में ले लिया। द्वारकाधीश ने उनसे कहा : ''पीपा! लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे कि मैंने तुम्हें अपनी गोद में ले लिया था, इसलिए तुम मेरी यह छाप (निशानी) ले जाओ।''

सात दिन बाद पीपाजी समुद्र से बाहर आये किंतु उन कपड़े सूखे ही थे।

आज का विज्ञान यह बात मानने को तैयार नहीं हो परंतु भक्ति के जगत में ऐसे-ऐसे चमत्कार होते हैं वैज्ञानिकों को भी सिर खुजलाना पड़ता है।

ईश्वर की सृष्टि में असंभव कुछ नहीं, सब संभव है

कर्तुं शक्यं अकर्तुं शक्यं अन्यथा कर्तुं शक्यम्।

पीपाजी ने भगवान द्वारा दी गयी छाप मंदिर के पुजा को दे दी। आज भी भक्त उस छाप का स्पर्श कर पुण्य अर्जन करते हैं।

कैसा है सत्संग का प्रताप और सद्गुरुओं का प्रसाद उनके संग से राजा लोगों ने भी विषयी-विकारी लघु जीव से ऊपर उठ उस ईश्वरीय सुख, सच्चे सुख को पा लिया तुम भी पहुँच जाओ ऐसे किसी सद्गुरु की शरण में तुम्हारा भी बेड़ा पार हो जाय...

(परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन एवं 'भारत के संत और भक्त' तथ 'भक्तमाल' ग्रंथों पर आधारित)

ईसाई न बनने पर नृशंस हत्या

रामेश्वरपुर, जि. ढेंकनाल (उड़ीसा) के निवासी श्री अलेक बेज के घर आकर तीन ईसाइयों ने उन्हें ईसाईयत में मतांतरित होने को कहा। इसके बदले में ईसाइयों ने उन्हें उनकी बेटी ज्योतिर्मयी की शादी के लिए रुपये-पैसे और सामान देने का वायदा भी किया। परंतु श्री अलेक बेज ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इस तरकीब के सफल न होने पर स्थानीय चर्च के नेताओं ने श्री बेज की धर्मपत्नी यशोदा को लालच देकर फँसाने की कोशिश की। उनसे कहा गया कि ''अगर तुम ईसाई बन जाती हो तो तुम्हारी बेटी को अच्छा वर मिल जायेगा, क्योंकि हमारे यहाँ कई अच्छे और खाते-पीते घरों के लड़के हैं।'' परंतु यशोदा उनकी बातों में नहीं फँसी। तत्पश्चात् यशोदा को धमकी दी गयी कि उसके परिवार के ईसाई न बनने पर उन्हें खतरनाक नतीजे भुगतने पड़ेंगे। इस धमकी के ठीक बाद 'सौदामिनी स्मृति विद्यापीठ' में पढ़नेवाली अलेक बेज की पुत्री ज्योतिर्मयी अपने विद्यालय से लापता हो गयी। उस विद्यालय के विद्यार्थियों ने ज्योतिर्मयी की गुमशुदगी के बारे में बेज परिवार को सूचित किया। अगले दिन सुबह १७ फरवरी २००५ को ज्योतिर्मयी का क्षत-विक्षत शव रेल-पटरियों के पास पड़ा मिला। ज्योतिर्मयी की हत्या बलात्कार के बाद की गयी थी। उसके दोनों हाथ और गर्दन काटकर शरीर से अलग कर दिये गये थे।

ईसाईयत में मतांतरित होने से इनकार करने पर एक लड़की की नृशंस हत्या की जाने से पूरा राज्य सदमे में है। स्थान-स्थान पर विरोध-प्रदर्शन किये जा रहे हैं। श्री अलेक बेज ने उन्हें धमकी देनेवाले ईसाइयों के नाम पुलिस प्राथमिकी में दर्ज कराये परंतु एक माह बीत जाने पर भी पुलिस अपराधियों को न पकड़ सकी। सेवेन्थ डे एडवेंटिस्ट, मेर्सी वेल्फेयर आर्गेनाइजेशन और बैप्टिस्ट चर्च जैसे संगठन ढेंकनाल जिले में सक्रिय हैं और विदेशी धन के सहारे हिन्दू जनता को ईसाईयत में मतांतरित होने के प्रलोभन देने में लगे हैं। अगर वे किसीको बरगलाने में कामयाब नहीं होते तो जोर-जबरदस्ती का सहारा लेते हैं। निर्दोष उड़ीसावासियों की गरीबी का नाजायज फायदा उठाकर उन्हें ऐसे अमानवीय तरीके से ईसाईयत में मतांतरित करने की कोशिश से स्पष्ट है कि ये ईसाई संगठन किसी भी हद को पार कर सकते हैं।

इस घटना से ईसाई मिशनरियों का असली चेहरा जगजाहिर हो गया है।

(संदर्भ : पांचजन्य, १३ मार्च ०५)

जानकर भी अनजान

कोका-कोला और पेप्सी-कोला जैसी कंपनियाँ देश के आर्थिक और प्राकृतिक संसाधनों का जिस कदर दोहन कर रही हैं, वह हम सबके लिए चिंता की बात होनी चाहिए। सॉफ्ट ड्रिंक्स के नाम से कुख्यात इन पेयों में कार्बोनेटेड रंगीन और खुशबूदार मीठे पानी के अलावा कुछ नहीं होता। इनमें अंतर्राष्ट्रीय मानकों की तुलना में कीटनाशकों की मात्रा भी ७० गुना तक ज्यादा है।

ये पेय बनानेवाली कंपनियाँ लोगों के जीवन के साथ खिलवाड़ तो कर ही रही हैं, साथ ही भूमिगत जल का भी बेशुमार मात्रा में दोहन कर रही हैं। पेप्सी और कोकाकोला के देशभर में लगभग ८५ बोटलिंग प्लांट्स हैं। जहाँ-जहाँ ये प्लांट लगे हैं, वहाँ आस-पास के कुएँ लगभग सूख गये हैं। खेत बंजर हो रहे हैं। गाँव में रहनेवाले लोग पानी के लिए मीलों भटक रहे हैं। मेरा सवाल है कि गरीब लोगों का पानी इस तरह क्यों छीना जा रहा है? क्या हमें अपने ही देश में दूध से भी ज्यादा महँगा पानी खरीदने के लिए मजबूर होना पड़ेगा? सोची-समझी रणनीति के तहत यह देश का पैसा देश के बाहर ले जाने की साजिश है और इस साजिश में हमारे यहाँ के राजनेता तथा नौकरशाह भी शामिल हैं।

हमसे कहा जाता है कि इन कंपनियों का विरोध करने से देश में विदेशी पूँजी निवेश पर प्रतिकूल असर पड़ेगा, लेकिन मेरा मानना है कि संदेश विदेशी पूँजी निवेश के खिलाफ नहीं जायेगा बल्कि यह संदेश जायेगा कि देश और देशवासियों का अहित करनेवाला कोई भी पूँजी निवेश भारतवासियों को स्वीकार नहीं है। इससे चंद राजनेताओं और नौकरशाहों पर दबाव बनाकर यों उन्हें प्रलोभन देकर अपना हित साधनेवाली विदेशी कंपनियाँ चेतेंगी और सोच-समझकर निवेश करेंगी। विदेशी निवेश विकास से जुड़ी अवधारणा है। इस कसौटी पर खरे उतरनेवाले निवेश के आने पर हमें खुश और जाने पर दुःखी होना चाहिए। हालाँकि इन कंपनियों का विरोध कर रहे हम लोगों को इन कंपनियों की ताकत का अंदाजा है।

हम लोगों को यह गलतफहमी कतई नहीं है कि ये कंपनियाँ बहुत जल्दी भारत से चली जायेंगी। हाँ, यह विश्वास हमें जरूर है कि या तो आनेवाले पाँच-छः वर्षों में ये कंपनियाँ भारत पर पूरी तरह छा जायेंगी या फिर भारत छोड़ देंगी। इन कंपनियों से देशभक्त लोगों की निर्णायक लड़ाई शुरू हो चुकी है और इसमें देश की राजनीतिक जमात और नौकरशाह वर्ग भी इन कंपनियों के साथ है।

– वंदना शिवा

('दैनिक भास्कर', जबलपुर, १३ मार्च २००५)

सॉफ्ट ड्रिंक्स लोगों को अस्थि-रोग, दंत-रोग, कैंसर और मोटापा जैसी बीमारियाँ प्रदान कर रहे हैं। अफसोस की बात तो यह है कि पढ़े-लिखे और सम्पन्न तबके के लोग यह सब जानकर भी इन घातक पेयों की ओर आकर्षित होते हैं और इन्हें पीना अपनी शान समझते हैं।

खिलवाड़ जिंदगी से

गाय : सारे राष्ट्र और विश्व की माता

हम गाय की सेवा करेंगे तो गाय से हमारी सेवा होगी। सेवक कैसा होना चाहिए इस पर विचार करने से लगता है कि सेवक के हृदय में एक मधुर-मधुर पीड़ा रहनी चाहिए और उत्साह रहना चाहिए, निर्भयता रहनी चाहिए एवं असफलता देखकर उसे कभी भी निराश नहीं होना चाहिए। सेवक से सेवा होती है, सेवा से कोई सेवक नहीं बना करता।

इस देश में ही नहीं, समस्त विश्व में मानव और गाय का ऐसा सम्बंध है जैसे मानव-शरीर के साथ प्राणों का। अन्य देशों में गाय का सम्बंध आत्मीय नहीं रहा, कहीं आर्थिक बना दिया गया, कहीं कुछ बना दिया गया (यह वक्तव्य उस समय का है जिस समय भारत में इतने कत्लखाने नहीं खुले थे)। मेरे ख्याल से गाय का सम्बंध आत्मीय सम्बंध है। गाय मनुष्यमात्र की माता है।

मेरे दिल में एक दर्द है कि कोई घर ऐसा न हो जिसमें गाय न हो, गाय का दूध न हो। हर घर में गाय हो और गाय का दूध पीने को मिलना चाहिए। गाय ने मानवबुद्धि की रक्षा की है।

बेईमानी का समर्थन करना और उससे एक-दूसरे पर अधिकार जमाना - यह प्रवृत्ति आज बढ़ती जा रही है। इसका कारण है कि बुद्धि सात्त्विक नहीं है, बुद्धि सात्त्विक क्यों नहीं है ? कारण, मन सात्त्विक नहीं है। मन सात्त्विक क्यों नहीं है ? कारण, शरीर सात्त्विक नहीं है। शरीर सात्त्विक नहीं है तो इसका कारण ? आहार सात्त्विक नहीं है।

गाय के दूध में, घी में स्वर्ण क्षार होते हैं, सात्त्विकता होती है। गाय के शरीर में से गोशक्ति के प्रभाव से चौबीसों घंटे सात्त्विक तरंगें निकलती हैं। इसी कारण राजसी-तामसी शक्तियों की बाधा के शिकार बने बच्चों को गाय की पूँछ से झाड़ा जाता था। पूतना राक्षसी द्वारा नन्हे श्रीकृष्ण को भगा ले जाने के प्रसंग के बाद श्रीकृष्ण को भी गाय की पूँछ से झाड़ा गया था।

जैसे-जैसे आप गोसेवा करते जायेंगे, वैसे-वैसे आपको यह मालूम होता जायेगा कि गाय आपकी सेवा कर रही है। स्वास्थ्य की दृष्टि से, बौद्धिक दृष्टि से और हर दृष्टि से आपको यह लगेगा कि आप गाय की सेवा कर रहे हैं तो गाय आपकी हर तरह से सेवा कर रही है।

हम सच्चे सेवक होंगे तो हमारी सेवा होगी, हमारी सेवा का मतलब मानव-जाति की सेवा होगी। मानवमात्र की सेवा से ही सब कुछ हो सकता है। जब मानव सुधरता है तो सब कुछ सुधरता है और जब मानव बिगड़ता है तो सब कुछ बिगड़ जाता है।

मानव को सात्त्विक आहार, सात्त्विक संग, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत आदि सत्शास्त्रों का पठन-मनन और सत्संग-श्रवण करना चाहिए। उसका मंगल इसीमें है कि वह सद्गुण बढ़ाता जाय।

'खाया बासी और बन गये उपवासी'

एक धनाढ्य सेठ था, पर था बड़ा कंजूस स्वभाव का। दान-पुण्य के लिए तो उसका हाथ कभी खुलता ही न था। उसके घर जो पुत्रवधू आयी वह बड़े कुलीन और सत्संगी घराने की थी। घर के संस्कारी माहौल और सत्संग में जाने के कारण बचपन से ही उसके स्वभाव में बड़े-बुजुर्गों की सेवा, साधु-संतों का स्वागत-सत्कार, सत्संग सुनना, दान-दक्षिणा देना आदि उच्च संस्कार आत्मसात् हो गये थे। वह व्यर्थ खर्च के तो खिलाफ थी परंतु अच्छे कार्यों में, लोक-मांगल्य के कार्यों में पैसे खर्चने में हिचक नहीं रखनी चाहिए, ऐसी उसकी ऊँची मति थी। ससुरजी की कंजूसीभरी रीति-नीति उसे पसंद न आयी। वह प्रयत्नशील रहती कि ससुरजी का लोभी-लालची मन उदार व परोपकारी बने।

एक दिन सेठजी घर पर ही थे। बहू पड़ोसन से बातें कर रही थी। पड़ोसन ने पूछा : ''क्यों बहना ! आज खाने में क्या-क्या बनाया था ?''

तब बहू ने कहा : ''बहन ! आज कहाँ रसोई बनायी, हमने तो खाया बासी और बन गये उपवासी।''

बहू के ये शब्द ससुरजी के कानों में पड़े तो वे चौंके और अपनी पत्नी पर बिगड़ पड़े कि ''ठीक है, मैं कंजूस हूँ, परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि मेरी समाज में कोई इज्जत ही नहीं है। तुमने बहू को बासी अन्न खिला दिया। अब वह तो सारे मुहल्ले में मेरी कंजूसी का ढिंढोरा पीट रही है।''

सेठानी ने कहा : ''मैंने कभी बहू को बासी खाना दिया ही नहीं है। मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ कि इतना भी न जानूँ।'' सेठ ने बहू को बुलाकर पूछा : ''बेटी ! तुमने तो आज ताजा भोजन किया है। फिर पड़ोसन से झूठ क्यों कहा कि खाया बासी और बन गये उपवासी ?''

''ससुरजी ! मैंने झूठ नहीं कहा बल्कि सौ प्रतिशत सत्य कहा है।''

बुद्धिमान बहू ने नम्रतापूर्ण स्वर में सत्य समझाते हुए कहा : ''जरा सोचिये, ससुरजी ! आज हमारे पास धन-दौलत है, जिससे हम खूब सुख-सुविधाओं में आनंद से रह रहे हैं। यह वास्तव में हमारे पूर्वजन्म के पुण्यकर्मों का ही फल है। इसलिए आज हम जो सुख भोग रहे हैं, वह सब बासी आहार के समान है अर्थात् हम बासी खा रहे हैं और जो धन हमें मिला है उससे दान, पुण्य, धर्म या परोपकार के कार्य तो कर नहीं रहे हैं। अतः अगले जन्म के लिए तो हमने कुछ पुण्य-पूँजी सँजोयी नहीं है। इसलिए अगले जन्म में हमें उपवास करना पड़ेगा। अब आप ही बताइये, क्या मेरा वचन सत्य नहीं है ?''

बहू की युक्तिपूर्ण सुंदर सीख सुनकर सेठ की बुद्धि पर से लोभ का पर्दा हट गया, सद्ज्ञान का प्रकाश हुआ और वे गद्गद स्वर से बोले : ''मैं धन्य हुआ जो तुझ जैसी सत्संगी की सुपुत्री मेरे घर की लक्ष्मी बनी। बेटी ! तूने आज मुझे जीवन जीने की सही राह दिखायी है।''

फिर तो सेठजी ने दान-पुण्य की ऐसी सरिता प्रवाहित की कि दान का औदार्य-सुख, आत्मसंतोष, उज्ज्वल भविष्य और परोपकारिता का मंगलमय सुस्वभाव उन्हें प्राप्त हो गया, जिसके आगे धन-संग्रह एवं सुख-सुविधा का बाह्य सुख उन्हें तुच्छ लगने लगा। परोपकार से प्राप्त होनेवाली आंतरिक प्रसन्नता और प्रभुप्राप्ति ही सार है यह उनकी समझ में आ गया।

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के सान्निध्य में गुरुपूर्णिमा महोत्सव

दिनांक	स्थान	संपर्क
२ व ३ जुलाई	जयपुर (राज.) में संत श्री आसारामजी आश्रम, गोनेर रोड, गोविंदपुरा।	(०१४१) २२७४६०४, ९८२९०१५२७५.
६ से ८ जुलाई (सुबह तक)	चण्डीगढ़ में संत श्री आसारामजी आश्रम, गाँव स्यूंक, जि. रोपड़।	(०१७२) ५०८२५५२.
९ व १० जुलाई	दिल्ली में संत श्री आसारामजी आश्रम, N.H.-8 रोड, रजोकरी।	९८१०००१३०५, ९८१०२७००२९.
११ व १२ जुलाई	भोपाल (म.प्र.) में संत श्री आसारामजी आश्रम, बायपास रोड, गाँधीनगर।	(०७५५) २७४२५००, २७१३०५५.
१४ व १५ जुलाई	नागपुर (महा.) में रेशमबाग मैदान।	(०७१२) २६६७२६७-६८, ९४२२१०३१५२.
२० से २२ जुलाई	अमदावाद (गुज.) में संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग।	(०७९) २७५०५०१०-११.
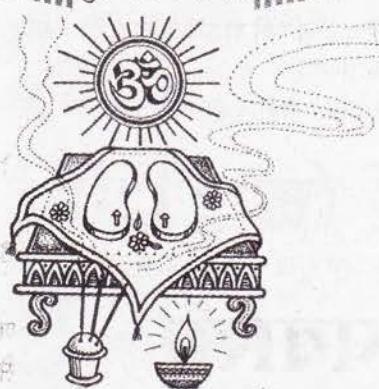
गुरुकृपा ही शिष्य का लक्ष्य हो

जिस प्रकार मधुमक्खियाँ सैकड़ों-हजारों फूलों से मकरंद चूसकर लाती हैं और उसे अपने छत्ते में कई दिनों तक सँजोकर उससे शहद बनाती हैं, फिर उसका रसास्वादन करती हैं, ठीक उसी प्रकार सद्गुरु एवं उनके द्वारा निर्दिष्ट सत्शास्त्रों के अमृतवचनों को अपने हृदय में सँजोनेवाला और उनका मनन कर उन्हें शहद की तरह गाढ़ा बनानेवाला समझदार साधक इस भगवदीय खजाने के द्वारा गुरु-अमृत का रसास्वादन कर आत्मोन्नति के रास्ते आगे बढ़ता है । एक कुशल कारीगर पत्थर की शिला में से अनावश्यक भाग निकाल फेंकता है, तब उस ऊबड़-खाबड़ पत्थर में से सुंदर भगवन्मूर्ति साकार हो उठती है। सद्गुरु संसार के ऐसे सभी कारीगरों से विलक्षण, सर्वोत्तम कारीगर हैं । परिच्छिन्नता के महारोग से ग्रस्त, दुर्गुण-दुराचार में व्यस्त और चिंता-तनावों से त्रस्त आज का मानव जब उनसे श्रद्धारूपी सूत्र से जुड़ जाता है, तब वे उसके मन से दुर्गुणों को निकाल फेंकते हैं और प्रदीर्घ काल तक बड़े धैर्य से उसकी घड़ाई कर दीन-हीन बन बैठे एक नर में से सर्वसमर्थ नारायण का प्राकट्य कर दिखाते हैं । हालाँकि पत्थर की शिला अपनी घड़ाई के समय मूर्तिकार का कोई विरोध नहीं करती, वहीं साधक-शिष्य की श्रद्धा किसी-किसी मोड़ पर डगमगा जाती है और वह अपनी घड़ाई करने में सद्गुरु का विरोध करता है। फिर भी उसकी छोटी मति को और अपने ऊँचे उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सद्गुरु उसका हाथ थामे रखते हैं और उसे लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाते रहते हैं।

मनरूपी पौधे की जड़ जगत की मिट्टी में जम गयी है, इसे गुरु के आँगन में रोप दो, फिर देखो इसमें गुरुकृपा के कैसे सुरभित, रंगबिरंगे, सुंदर-सुंदर फूल खिल उठते हैं और अमृत से भी मधुर गुरुज्ञान के फल लद जाते हैं !

मातृ-पितृभक्ति, राष्ट्रभक्ति, ईश्वरभक्ति की माला का मेरुमणि है गुरुभक्ति। इसके बिना अन्य कोई भी भक्ति निःस्वार्थ रुप से नहीं हो सकती । इसके होनेमात्र से उपरोक्त सभी प्रकार की भक्तियाँ स्वतः हो जाती हैं और वह भी बहुत उत्तम ढंग से। स्वामी शिवानंदजी ने भी कहा है :

''कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग आदि सब योगों की नींव गुरुभक्तियोग है।''

जो शिष्य गुरुज्ञान को अपने आचरण में उतार लेता है, उसका जीवन महक उठता है। शिष्य के लिए तो सद्गुरु एक चेतन ग्रंथ हैं। आत्मतीर्थ में पहुँचकर जीवन सफल बनाने की अभिलाषा रखनेवाले साधक के लिए सद्गुरु ही सही मायने में साकार तीर्थ हैं।

सद्गुरु के प्राण शिष्यों में और शिष्यों के प्राण सद्गुरु में बसते हैं, ऐसा उपनिषदों में कहा गया है। मनरूपी पौधे की जड़ जगत की मिट्टी में जम गयी है, इसे गुरु के आँगन में रोप दो, फिर देखो इसमें गुरुकृपा के कैसे सुरभित, रंगबिरंगे, सुंदर-सुंदर फूल खिल उठते हैं और अमृत से भी मधुर गुरुज्ञान के फल लद जाते हैं !

जैसे-जैसे शिष्य का शिष्यत्व निखरता जाता है, वैसे-वैसे गुरुभक्तियोग के मार्ग पर उसकी यात्रा अधिकाधिक रसमय होती जाती है। शिष्य की आंतरिक पुकार इतनी बढ़ जाती है कि सद्गुरुरूपी विश्वव्यापक चुंबक का सूक्ष्म चुंबकीय क्षेत्र शिष्य की अंतर्चेतना को अतुलित सात्त्विक ऊर्जा, अद्भुत शक्ति, विलक्षण ओज-तेज और दिव्य प्रेरणाएँ प्रदान करता है। हर पल, हर जगह, हर परिस्थिति में शिष्य गुरुकृपा के दर्शन करने लगता है और जीवन से ऊब चुके, क्षण-क्षण फरियाद करनेवाले लोग

"हे अर्जुन ! जिसके मन में गुरुभक्ति के लिए अनुराग होता है, जिसके मन में इसके लिए उत्कंठा होती है, जिसे गुरुसेवा के सिवा और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वही पुरुष तत्त्वज्ञान का आधार है और वह ज्ञानी भक्त प्रत्यक्ष देवता ही होता है।"

भी उसका सान्निध्य पाकर अपनी दुरावस्था से ऊपर उठने लगते हैं।

शिष्यत्व विकसित करने से गुरुदेव की अधिकाधिक कृपा मिलती है, उनका दिव्य प्रेम मिलता है तथा उनकी दिव्य शक्तियों के अनुदान से हम अनुगृहीत होते हैं।

बिना गुरुकृपा के इस संसाररूपी सघन अरण्य को पार कर पाना असंभव है, जिसमें रोग, शोक, कष्ट तथा प्राकृतिक आपदाओं रूपी हिंसक पशु मानव-जीवन को निगलने के लिए मुँह फाड़े खड़े हैं। जहाँ गिद्ध जैसी वृत्ति के जीव लालच में आकर दूसरे के जीवन में पैनी चोंच मारने के लिए बैठे हैं। जहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार रूपी विषैले सर्प साधक के जीवन को विषाक्त करने में प्रयासरत हैं। ऐसे अंधकारमय एवं दुर्गम मार्ग को अकेले पार नहीं किया जा सकता। किसी तत्त्ववेत्ता सद्गुरु का मार्गदर्शन ही जीवन को उत्तम गति प्रदान कर सकता है। शिष्य भी मन से यह महसूस करता है कि कोई शक्ति छाया की तरह उसके साथ है, वह अकेला नहीं है।

धन्य हैं वे लोग जो सद्गुरु के पदचिह्नों पर, उनके बताये मार्ग पर चलकर ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं!

भगवान सदाशिव जगन्माता उमा से कहते हैं : 'नमस्कार व पूजा करने योग्य तो सद्गुरुदेव ही हैं।'

सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदांबुजम्।
वेदान्तार्थप्रवक्तारं तस्मात्संपूजयेद् गुरुम्॥

'गुरु सर्व श्रुतिरूप श्रेष्ठ रत्नों से सुशोभित चरणकमलवाले हैं और वेदांत के अर्थों के प्रवक्ता हैं। इसलिए श्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए।'

यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
सः एव सर्वसम्पत्तिः तस्मात्संपूजयेद् गुरुम्॥

'जिनके स्मरणमात्र से ज्ञान अपने-आप प्रकट होने लगता है, वे ही सर्व (शम-दमादि) संपदारूप हैं। अतः श्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए।' **(श्रीगुरुगीता)**

'ज्ञानेश्वरी गीता' के १३वें अध्याय में संत ज्ञानेश्वर महाराज गुरुभक्त, गुरुभक्ति एवं गुरुसेवा की महिमा पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं –

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं : "गुरु की भक्ति की कोई सीमा ही नहीं है। हे अर्जुन ! जिसके मन में गुरुभक्ति के लिए अनुराग होता है, जिसके मन में इसके लिए उत्कंठा होती है, जिसे गुरुसेवा के सिवा और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वही पुरुष तत्त्वज्ञान का आधार है और उसीके कारण ज्ञान का अस्तित्व है। केवल यही नहीं, वह ज्ञानी भक्त प्रत्यक्ष देवता ही होता है।"

शिष्य ने गुरु की कृपा कितनी पचायी है, इसका प्रमाण शिष्य की संसार को देखने की दृष्टि है। जिस ऊँची दृष्टि से गुरु संसार को देखते हैं, धीरे-धीरे शिष्य भी संसार को उसी ऊँची दृष्टि (आत्मदृष्टि) से देखने लगता है। शिष्य की आत्मदृष्टि जितनी अधिक विकसित होती है, कहा जा सकता है कि उतनी ही अधिक गुरुकृपा उसने पचायी है।

सद्गुरु एक ऐसा शाश्वत अस्तित्व है जो तुम्हारे जीवन की हर परिस्थिति में प्रतिक्षण तुम्हारे साथ है, तुम्हारी रक्षा करता है, तुम्हें सही राह दिखाता है। हयात सद्गुरु आग हैं, तू उसमें अपने अहंकार व वासना की आहुति देकर देख ले। वे संसार के सर्वोत्तम केवट हैं, तू उनकी भवतरण-नौका में सवार होकर देख ले। तू निश्चित ही समस्त दुःखों-आपदाओं से पार हो जायेगा, भवसागर से तर जायेगा।

गुरुवाणी तो साधक को यही कहती है : हे साधक ! तू अपने हृदय को सीप बना दे, ताकि सत्संगरूपी अमृतवर्षा की बूँदें उसमें ठहरायी जा सकें और उनसे ईश्वरीय आनंद व प्रभुप्रेमरूपी मोती पाये जा सकें। ये मोती तुम्हारे जीवन की शोभा बढ़ायेंगे। इनसे तुम स्वयं भी सुशोभित होओगे और दूसरों को भी सुशोभित बनाओगे। **– सं. पा.**

कंचन मेरु अरपहीं, अरपै कनक भंडार।
कहैं कबीर गुरु बेमुखी, कबहुँ न पावै पार॥
दासी केरा पूत जो, पिता कौन से कहे।
गुरु बिन नर भरमत फिरै, मुक्ति कहाँ से लहै॥
गुरु बिनु अहिनिस नाम ले, नहीं संत का भाव।
कहैं कबीर ता दास का, पड़ै न पूरा दाव॥
गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन सब निष्फल गया, पूछौ वेद पुरान॥
- संत कबीरजी

गुरु की किरपा अपरम्पारै। गुन गावत मम रसना हारै॥
सेस सहसमुखनिसदिन गावै। गुरु अस्तुति का अन्त न पावै॥
गुरु के प्रेम पन्थ सिर दीजै। आगा पीछा कबहुँ न कीजै॥
गुरु के पन्थ होय सो होई। मारग आन चलौ मत कोई॥
- संत सहजोबाई
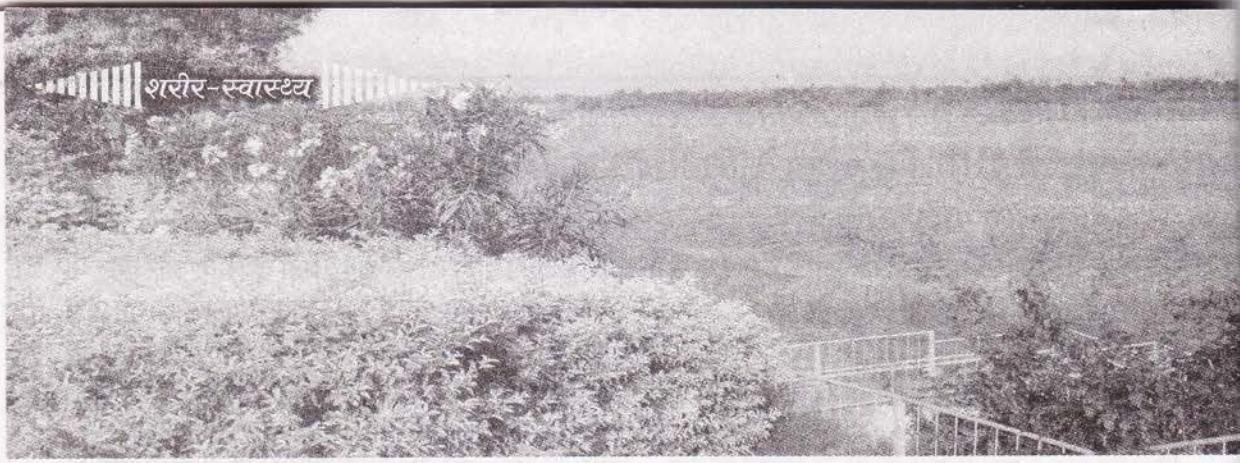
दक्षिणायन में स्वास्थ्य-सुरक्षा

ग्रीष्म ऋतु के अंत में उत्तरायण समाप्त हो जाता है और सूर्य दक्षिण दिशा की ओर गमन करने लगता है । इसे 'दक्षिणायन' कहते हैं । दक्षिणायन में वर्षा, शरद व हेमंत इन तीन ऋतुओं का समावेश होता है। इन ऋतुओं में सूर्य जब दक्षिण दिशा की ओर गमन करता है, तब मेघ, वायु और वर्षा के कारण उसकी ऊष्मा कम मात्रा में धरती तक पहुँचती है। वर्षा के कारण पृथ्वी का ताप भी शांत हो जाता है। इस कालखंड में चन्द्रमा पूर्ण बलवान रहता है तथा समस्त भूमंडल पर अपनी किरणें फैलाकर विश्व को निरंतर तृप्त करता रहता है । इस कारण पृथ्वी, जल तथा वनस्पतियों में मधुर, अम्ल, लवण इन स्निग्ध रसों की वृद्धि होने लगती है। उत्तरायण में रुक्ष वायु तथा सूर्य की प्रखर किरणों से दुर्बल बने शरीर को दक्षिणायन में धीरे-धीरे बल प्राप्त होने लगता है।

विसृजति ददाति पृथिव्याः
सौम्यांशं प्राणिनां बलं चेति विसर्गः ।

'दक्षिणायन पृथ्वी को सौम्यांश (शीतलता, स्निग्धता) तथा प्राणियों को बल प्रदान करता है, अतः इसे विसर्गकाल कहते हैं।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : अध्याय ६)

वर्षा ऋतु में विसर्गकाल प्रारम्भ होने से पृथ्वी, जल आदि में स्नेह की वृद्धि अल्प मात्रा में होती है, अतः शारीरिक बल में भी अल्प वृद्धि होती है । वर्षा के बाद आनेवाली शरद तथा हेमंत ऋतुओं में शरीर तथा जठराग्नि के बल में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

वर्षा ऋतु में शारीरिक स्थिति : इस ऋतु में भूमि से वाष्प निकलने तथा आकाश से जल बरसने के कारण हवा में आर्द्रता (नमी) रहती है। यह आर्द्रता श्वासोच्छ्वास के द्वारा शरीर में प्रवेश कर जठराग्नि को मंद कर देती है।

ग्रीष्म ऋतु में रुक्षता के कारण तथा अधिक शीत-जलीय पदार्थों के सेवन से शरीर में वायु का संचय हो जाता है, जो कि वर्षा ऋतु की शीत जलवायु के कारण प्रकुपित हो जाती है।

मंद जठराग्नि, प्रकुपित वायु तथा शारीरिक बल की अल्पता इस ऋतु में अनेक व्याधियों को आमंत्रित करती है । संधिवात, दमा, खाँसी जैसे वातजन्य रोग जोर पकड़ने लगते हैं। दूषित जल तथा हवा से हैजा, मलेरिया जैसी संक्रामक व्याधियाँ फैलने लगती हैं।

इनसे रक्षा करने तथा जठराग्नि को प्रज्वलित रखने हेतु कुछ उपाय यहाँ दिये जा रहे हैं।

सुरक्षा-उपाय : जठराग्नि की रक्षा के लिए सबसे प्रथम उपचार है उपवास। अपनी संस्कृति में श्रावण तथा भाद्रपद महीनों में अधिकाधिक व्रत तथा उपवासों का जो विधान है उसके पीछे धार्मिक लाभ के साथ-साथ स्वास्थ्य-रक्षण प्रधान हेतु है। मंद गति से कार्य करनेवाले पाचन-संस्थान पर अन्न का अधिक भार डालकर रोगों को आमंत्रित करने की अपेक्षा हलका, सुपाच्य भोजन लेना व उपवास रखना बुद्धिमानी है । प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार सप्ताह में कम-से-कम एक-दो दिन उपवास अवश्य रखना चाहिए। श्रावण महीने में किसी एक अनाज (जैसे केवल मूँग) पर रहना भी उपवास माना जाता है । इन दिनों में अनाज को पहले सेंककर बाद में उपयोग करना भी लाभदायी है। इससे वह पचने में हलका हो जाता है।

वायु और वर्षा से युक्त विशेष शीतवाले दिनों में भोजन में खट्टे, नमकीन व स्निग्ध पदार्थों की प्रधानता होनी चाहिए। बाहर की नमीयुक्त हवा का प्रतिकार करने के लिए शरीर तीखे-नमकीन पदार्थों की माँग करता है। इसकी पूर्ति पकौड़े-भुजिया आदि का अल्प मात्रा में सेवन

कर की जा सकती है। इन दिनों में लहसुन, अदरक, सोंठ, काली मिर्च, हरी मिर्च, अजवायन, हींग आदि तीखे पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इससे शरीर की नमी कम करने में तथा जठराग्नि प्रज्वलित रखने में मदद मिलती है। अदरक, लहसुन व नींबू का सेवन वर्षा ऋतु में विशेष लाभदायी है।

मंदाग्नि से सुरक्षा हेतु जीरा (सेंका हुआ), सोंठ, काला नमक और काली मिर्च - चारों समान मात्रा में लें और बारीक कूटकर उनका मिश्रण बना लें। ३ ग्राम चूर्ण ताजे पानी के साथ लेने से इन दिनों में होनेवाले मंदाग्नि, अजीर्ण, अफरा आदि पेट के रोगों में लाभ होता है।

इन दिनों में पानी उबालकर पीयें। पानी में सोंठ, नागरमोथ, जीरा अथवा धनिया डालकर उबालने से वह विशेष हितकर होता है।

इस ऋतु में जठराग्नि की रक्षा चाहनेवालों को पुराने जौ, गेहूँ और चावल का सेवन करना चाहिए। सब्जियों में सहिजन (सरगवा), सूरन, परवल, लौकी, हफ्ते में एक दिन करेला, विषखपरा[१] (साटी); दालों में कुल्थी[२], मूँग; तेलों में तिल का तेल सेवनीय हैं। जबकि सब्जियों में आलू, गोभी, ग्वारफली, भिंडी; दालों में अरहर (तुअर), उड़द, राजमा तथा अंकुरित अनाज त्याज्य हैं।

श्रावण मास में दूध व हरी सब्जियाँ तथा भाद्रपद में छाछ व लौकी का सेवन नहीं करना चाहिए।

वर्षा ऋतु में प्रकुपित वायु के शमनार्थ अनुभवी वैद्यों द्वारा बस्ति उपक्रम करवाने से सम्पूर्ण वर्षभर वातजन्य व्याधियों से रक्षा होती है। इस ऋतु में गोमूत्र के पान, मुलतानी मिट्टी से स्नान, घर तथा आस-पास के परिसर में धूप करने, गोबर अथवा गोमूत्र से भूमि को स्वच्छ व पवित्र रखने तथा परंपरागत व्रत-उपवास रखने से व यज्ञ-याग, जप आदि करने से स्वास्थ्य-लाभ के साथ-साथ महान धर्म-लाभ भी होता है।

१. इसे संस्कृत में 'पुनर्नवा', गुजराती में 'साटोड़ी', मराठी में घेट्टली (घेटुळी), सिंधी में 'लुण्क' तथा पंजाबी में 'साटा' बोलते हैं। गुर्दे (किडनी) को नवीनता बख्शनेवाली यह सब्जी गुर्दे की कमजोरी को दूर करने के लिए वरदानस्वरूप है।

२. कुल्थी के सेवन से अन्य दालों के लाभ तो मिलेंगे ही, साथ ही इसके पथरीनाशक गुण का भी लाभ मिलेगा।

बवासीर की उत्तम औषधि

नारियल के ऊपर की जटा लेकर माचिस की तीली से उसे जला दें। जब जटाएँ जल जायें तब उनकी राख को छानकर काँच के साफ बर्तन में भरकर रख दें। एक कटोरी ताजा जमा हुआ दही लेकर उसमें एक चम्मच यह राख घोल दें। इस राख के अलावा दही में शक्कर या मिर्च-मसाला कुछ भी न डालें। इस घोल को सुबह उठते ही बिना कुछ खाये-पीये पी जायें। इसके एक-डेढ़ घंटे बाद तक कुछ खायें-पीयें नहीं। ऐसा तीन दिन तक करने से खून गिरना बंद हो जायेगा और मस्से सूख जायेंगे। खूनी और बादी बवासीर जड़ से चली जायेगी।

बातें छोटी-छोटी, लाभ ढेर सारा

* प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय के बाद नीम व तुलसी के पाँच-पाँच पत्ते चबाकर ऊपर से थोड़ा पानी पीने से प्लेग तथा कैंसर जैसे खतरनाक रोगों से बचा जा सकता है और यादशक्ति भी बढ़ती है। ४० दिन तक रोज बिल्वपत्र के ७ पत्ते चबाकर ऊपर से थोड़ा पानी पीने से स्वप्नदोष की बीमारी से छुटकारा मिलता है।

* सुबह खाली पेट चुटकीभर साबुत चावल (अर्थात् चावल के दाने टूटे हुए न हों) ताजे पानी के साथ निगलने से यकृत (लीवर) की तकलीफें दूर होती हैं और वह ठीक हो जाता है।

* सुबह खाली पेट चाय या कॉफी पीने से जीवनशक्ति का बहुत ह्रास होता है तथा बुढ़ापा जल्दी आता है। पाचनशक्ति मंद हो जाती है, भूख मर जाती है, दिमाग कमजोर होने लगता है, गुदा और वीर्याशय ढीले पड़ जाते हैं। डायबिटीज जैसे रोग होते हैं और नींद उड़ जाती है।

* भोजन कम-से-कम २५ मिनट तक खूब चबा-चबाकर करना चाहिए। भोजन से पूर्व अदरक के दो-चार टुकड़े सेंधा नमक व नींबू मिलाकर खाने से मंदाग्नि दूर होती है।

* प्रतिदिन स्नान से पूर्व दोनों पैरों के अँगूठों पर सरसों का तेल मलने से वृद्धावस्था तक नेत्रज्योति कमजोर नहीं होती। सुबह नंगे पैर हरी घास पर चलने से तथा आँवला खाने से नेत्रज्योति बढ़ती है। (क्रमशः)

सत्संग की गंगा है वह पूँजी, मिलती है जिसमें भव-मर्ज की कुंजी।

बिलासपुर (हि.प्र.), ३ से ५ जून : महर्षि वेदव्यासजी की तपःस्थली बिलासपुर (पूर्वकालीन व्यासपुर) में पहली बार पधारे ब्रह्मवेत्ता संत परम पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग का लाभ लेने हेतु विशाल जनसैलाब उमड़ा। पुण्यसलिला सतलुज नदी के तट पर निर्मित विशाल सत्संग-पंडाल में संत-समागम का यह अभूतपूर्व दृश्य स्थानीय लोगों के लिए अनूठा था।

४ जून का प्रातःकालीन सत्र विशेष रूप से विद्यार्थियों को सुपुर्द था, जिसमें योगनिष्ठ बापूजी ने विद्यार्थियों को स्वस्थ रहने की कला, परीक्षा में अच्छे अंक पाने के गुर व श्रेष्ठ नागरिक बनने के सद्गुण बताये। पूज्यश्री के श्रीमुख से विद्यार्थियों को यहाँ ज्ञान का वह खजाना मिला जो उन्हें स्कूलों में शिक्षकों व घरों में अभिभावकों से कभी नहीं मिला था। धन्य हैं वे शिक्षक व अभिभावक जो बालकों को ऐहिक विद्या के साथ-साथ योग विद्या एवं आत्मविद्या, आत्मयोग को प्राप्त संतों से दिलाते हैं!

पठानकोट, ७ व ८ जून : पंजाब, हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर के संगम-स्थल पठानकोट में भी पहली बार ही पूज्यश्री के श्रीचरण पड़े। उपरोक्त तीनों प्रान्तों से आये श्रद्धालु संतशिरोमणि को अपने बीच पाकर झूम उठे। सत्संग-प्रांगण में निकट-दर्शन की अभिलाषा से यहाँ के भक्तगण प्रातः ५ बजे से ही आकर आगे बैठने लगे थे।

सत्संग-ज्ञानयज्ञ की पूर्व-संध्या पर, ६ जून को विशाल शोभायात्रा निकाली गयी, जो नगर के सभी मुख्य स्थानों से गुजरती हुई सत्संग-स्थल पर समाप्त हुई।

पठानकोट से जम्मू जाते हुए ९ जून की सुबह का एक ज्ञान-सत्र कठुआ आश्रम के नाम रहा।

१० से १२ जून का समय **जम्मू (जम्मू-कश्मीर)** के हिस्से आया। यहाँ भगवती नगर स्थित आश्रम में ३ दिवसीय सत्संग-वर्षा के दौरान ध्यान योग शक्तिपात साधना शिविर-सा माहौल सर्जित हुआ। इन दिनों दर्शन-सत्संग से छके भक्तों ने यहाँ अपूर्व शांति, अलौकिक आनंद व निश्चिंतता का पैगाम पाया। हजारों श्रद्धालुओं ने पूर्णिमा-व्रत लिया, जिसमें उन्होंने पूज्य बापूजी की चरणधूलि से पावन हुए इस स्थल पर आकर हर पूर्णिमा के दिन जप-ध्यान-साधना कर शांति पाने का संकल्प लिया।

रोहिणी (नई दिल्ली), १९ से २२ जून : यहाँ चार दिवसीय सत्संग-ज्ञानयज्ञ और ज्येष्ठ मास का पूर्णिमा-दर्शनोत्सव संपन्न हुआ। ज्येष्ठ की तपती धूप में भी दिल्ली के भक्तों में भक्ति व गुरुदर्शन की खुमारी कम नहीं थी। एक तरफ ग्रीष्म ऋतु की गर्मी अपने पूर्ण यौवन पर थी तो दूसरी ओर गुरुभक्तों की भक्ति व सद्गुरु-दर्शन की उत्कंठा भी लाजवाब थी।

२१ जून का प्रथम सत्र दिल्ली के विद्यार्थियों के नाम रहा, जिसमें योगनिष्ठ परम पूज्य बापूजी ने छात्र-छात्राओं को बहुमुखी विकास के अमूल्य गुर बताये।

२२ जून को पूर्णिमा-दर्शनोत्सव के पश्चात् पूज्यश्री अमदावाद के लिए रवाना हुए।

अमदावाद, २२ जून : पूर्णिमा नजदीक आते ही एक ओर पूर्णिमा-दर्शन के व्रतधारी भक्तों को पूज्यश्री के दर्शन के लिए पहुँचने का चिंतन शुरू हो जाता है तो दूसरी ओर भक्तवत्सल पूज्य बापूजी के हृदय में भी अपने प्यारे भक्तों को दर्शन-सत्संग के लिए आने में कैसे सरलता हो इसका चिंतन शुरू हो जाता है। जून माह की पूर्णिमा जबकि दिल्ली में घोषित हो चुकी थी परंतु गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश तथा दक्षिण भारत के भक्तों की सुविधा को ध्यान में रखकर करुणामूर्ति बापूजी ने २२ जून की दोपहर के बाद अमदावाद में भी पूर्णिमा-दर्शन का कार्यक्रम दिया।

पूज्य बापूजी के श्रीमुख से निःसृत सत्संगामृत में आया : ''जब तक मनुष्य के जीवन में व्यवहार-शुद्धि नहीं आयेगी, तब तक उसे सत्संग का रंग नहीं लग सकता। जो मनुष्य मनमानी करता है और अपने माता-पिता एवं गुरु की बात को नहीं मानता, उनकी अवज्ञा करता है वह संसार के इस मायाजाल में फँसता चला जाता है।''

आश्रम में २२ तारीख की सुबह से ही दर्शन के लिए आनेवाले भक्तों का ताँता लगा हुआ था। पूज्य बापूजी ने सत्संग की दो VIDEO DVD का भी विमोचन किया, जिनके नाम हैं : 'एक साधे सब सधे', 'ईश्वरप्राप्ति सरल है एवं भक्त प्रह्लाद का विवेक'।

पूज्य बापूजी ने अनुशासन पर जोर देते हुए कहा कि ''मनुष्य-जीवन में अनुशासन का बहुत महत्त्व है। जिनके जीवन में अनुशासन नहीं है उनका जीवन तो पशुओं से भी बदतर है।'' पूज्य बापूजी ने सत्संग व कीर्तन के महत्त्व एवं मनुष्य-जीवन पर उनके महत्त्वपूर्ण प्रभाव को भी बताया। इस प्रकार उत्तर भारत के भाग्यशाली भक्तों के साथ-साथ भारत के मध्य भाग के पुण्यात्मा भक्तों को भी पूर्णिमा के पावन दिन पूज्यश्री के निकट से दर्शन-सत्संग का अनुपम लाभ मिला।

दौड़–धूप भरे अपने जीवन में सत्संग के परम पुण्यमय क्षण सँजोकर स्वर्गसुख को भी फीका कर रहे हैं पश्चिम दिल्लीवासी।

एक ओर बापूजी के साथ संकीर्तन द्वारा आंतरिक प्रसाद पा रहे हैं तो दूसरी ओर स्वयंसेवकों द्वारा बाह्य प्रसाद के पैकेट भी पा रहे हैं कठुआ (जम्मू–कश्मीर) के सौभाग्यशाली सत्संगी।

दूर–दूर तक भक्तों की भीड़... उनकी तल्लीनता... संत–वचन को अपने हृदय–पटल पर अंकित करने की तत्परता... भगवत्प्रेम की प्यास... ऐसा ही सुमधुर दृश्य रहा सहारनपुर (उ.प्र.) के सत्संग–कार्यक्रम में।

✲R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION NO. GAMC-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207(DATE OF ISSUE 22-5-2003 & VALID UP TO 31-12-2005). POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. ✲ MBI PATRIKA CHANNEL, MUMBAI-101, WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. NW-9 REGD NO. TECH/47-833/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. ✲ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. ✲ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5-6 OF EVERY MONTH.

बिलासपुर (हि.प्र.) के सत्संग-कार्यक्रम की झाँकियाँ :

स्कूलों में तो दो संख्याओं का योग सिखाया जाता है, वैद्य लोग दो दवाइयों का योग सिखाते हैं, परंतु धन्य है ब्रह्मनिष्ठ योगियों का यह पातंजल योग, सफलताप्रद योग जो आखिर आत्मा को परमात्मा से मिला देता है।

विशाल पंडाल भी नन्हा हो जाता है जनसैलाब के आगे।

वाह भारत के वीर सत्संग-प्रेमियो ! सच्चे संत, सच्चे ज्ञान के प्रति आपकी निष्ठा अवर्णनीय है। भगवान शिव आपको साधुवाद देते हुए कहते हैं : धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः। धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ॥ अर्थात् जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है। (श्रीगुरुगीता : १५०)

हिमाचल प्रदेश के पुण्यात्माओं ने अपनी सत्संगप्राप्ति की प्यास को बुझाने में सफलता पायी। साधकों का यह श्रम हिमाचल के प्रत्येक व्यक्ति के लिए परम कल्याणमय साबित हुआ। जहाँ आम परिवारों ने इस अवसर का फायदा उठाया वहीं भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार भी परिवारसहित पहुँचे सत्संग का लाभ लेने।